सर्वोपनिषत्सारभूतम्

श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्रम्

सटिप्पणम्

स्वामीतपोवनम्

पूज्यपाद श्रीतपोवनस्वामिविरचितम्
सर्वोपनिषत्सारभूतम्

श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्रम्

तत्कृतटिप्पणीसमलंकृतम्
द्विवेदीत्युपाह्व विश्वनाथात्मजेन
पंडितश्री वल्लभरामशर्मणा प्रकाशितम्

(सर्वेऽधिकाराः स्वायत्तीकृताः)

मूल्यं १० आणकाः

मुद्रकः—
प्रभाशंकर जयशंकर पाठक.
श्री जगदीश्वर प्रिंटिंग प्रेस,
गिरगांव गायवाडी, घर नं. ९,
मुंबई–४.

आवृत्ति १.] सन १९३०. [प्रति १०००.

भूमिका ।

यह अष्टादशस्तवकात्मक "श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्र" सर्वोपनिषद्रूपकल्पतरु के पुष्पोमेंसे साभिनिवेश आकर्षित किया हुआ "मधु" है. अनेक प्रकारके राग और द्वेषादिसे भरपूर यह संसारमें परमेश्वर की भक्ति और ज्ञानाख्य "मधु" आस्वादनसे परं और कोई वास्तविक पुरुषार्थ नहीं है.

यह स्तोत्र राज ऐसा है कि, पढने मात्रसे अवर्णनीय भक्तिरसका हृदयमें संचार हो जाता है. यद्यपि आजकल स्तोत्र तो बहुत उपलब्ध होते हैं, तथापि, इसमें तो अनेक प्रकार की अपूर्वताएं भरी है; जिसमें से मुख्य तीन का तो मैं उल्लेख करता हूं.

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं ।

न शोभतेज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥

अर्थात्, कैसाभी नैष्कर्म्यरूप, परिपूर्ण निरञ्जन, ज्ञान होवे तथापि उसी ज्ञान यदि परमेश्वर भक्ति रहित होवे; तो वह अच्छा नहीं लगता; केवल शुष्क लगता है. इसी बातकुं ध्यानमें रखकर, यह स्तोत्रमें अनेक प्रकारके उत्तम छंदोमें, ईशादि बृहदारण्यकांत दश, और श्वेताश्वतर आदि छ, ऐसा मिल-कर षोडश उपनिषत् के अर्थोंका अति सरलता और भक्तिरसपूर्वक श्री उत्तरकाशीविश्वनाथमें समन्वय किया है. अतएव सभक्तिक ज्ञानका प्रतिपादन, यह प्रथम अपूर्वता है.

श्री उत्तरकाशीक्षेत्र वडा पुण्यस्थान है. अहो ! जिसने पृथ्वीभरका पर्वतराज हिमगिरिमध्यस्थ इस क्षेत्रका दर्शन श्रवणादिक किया नहीं उसकु भाग्यहीन माननेमें कोई दोष नहीं.

जहांके वृक्ष अपनेको स्थावर योनि मिलने परभी स्वजन्म साफल्य मानते हुवे, संसार संतप्त पुरुषों की तरफ देखकर; अपने खीले हुवे पुष्पोंसे मानों हांसी करते हुवे मालुम पडते हैं.

जहां पतित पावनी भागीरथी अपनी चंञ्चल लहरियों-द्वारा निरंतर ताण्डव करती हुई. क्लेशादि परिपीडित मनु-

ष्योंका दर्शन मात्रसेही सर्व प्रकारका दुःख निवृत्त कर देती है. और श्री रचयिता इस स्तोत्रके अंतिम स्तवकमें लिखते हैं कि,

पञ्चक्रोशविशङ्कटं वरुणया चास्याच संवेष्टितं ।
भूभृद्भूषण वारणावत नितंबालंबियद्भ्राजते ॥
गंगा यत्र च गायतीव मधुरं सामोर्मितुङ्गस्वनै–।
स्तप्यन्ते च तपो वितृष्णमतयो यत्रोल्बणं साधवः॥ १ ॥
तत्रास्ते विश्वनाथः श्रीशक्त्यादि सहितः प्रभुः ॥

स्तवक, १८। श्लो. २१।२२.

अर्थात् पांच कोस तो जिसका विस्तार है; वरुणा और असी नदियां जिसकु संवेष्टन कर रही है. पर्वतभूषण वारणावत, (हिमगिरिका शाखापर्वत) के मध्य भागमें जो स्थित है; जहां गंगा भगवती अपना वेगवत्तर प्रवाहकी उर्मियों के उच्च मधुर स्वरोंसे मानों सामगान करती हुई मालुम पडती है; और जहां तृष्णारहित परमहंस साधुलोग अति कठिन तपश्चर्या कर रहे हैं.

उस पुण्यक्षेत्रमें श्रीविश्वनाथजी शक्तिसहित विराजते है.

फलतः ऐसे शुद्ध क्षेत्रके अधिष्ठाता श्रीविश्वनाथजीका यह स्तोत्र होनेसे, पठन करनेवालोंको अद्वितीय भक्तिज्ञान प्राप्त करा देता है यह द्वितीय अपूर्वता है.

जैसे कोई चारित्र्यहीन विद्वान् लोग, अपनी विद्वत्ताको दिखानेके लिये स्तोत्र बना देते हैं; ऐसा यह नहीं; किंतु इसको तो परमहंस ब्रह्मनिष्ठ स्वामीजी **श्री तपोवनजी** महाराज, जो परमपूज्य, प्रातःस्मरणीय, तेजोमय मूर्ति है; उन्होंने कोई चातुर्मास्यके समयमें श्री उत्तरकाशीमें, अपने हृदयांतर्गत शिवभक्ति उद्रेक से; प्रतिदिन नियमानुसार दश बारह श्लोक बनाके श्रीविश्वनाथजीकु सुनाना; ऐसे प्रायः देढ मासमें यह पवित्र स्तोत्र पूर्ण करके भगवान् सदाशिवको अर्पण किया.

अत एव ऐसे परमपवित्र शुद्ध चारित्रवान् भक्तिज्ञान युक्त महात्मा का बनाया हुआ स्तोत्र का पाठ करनेसेही अंतःकरण शुद्ध हो जाता है; और भक्तिभाव प्रगट होता है.

शुद्ध पुरुष प्रणीत यह स्तोत्रका पाठ, सर्वपापशुद्धिका हेतु होनेसे इसमें यह तृतीय अपूर्वता हे.

मैंने अचानक यह स्तोत्र पूज्य स्वामीजीकी पास देखके

पढा; मेरेको वडाही आनंद प्राप्त हुआ; और लोकोपकारार्थ यह छपवाना अच्छा है, ऐसी मेरी प्रार्थना उनकु ठीक लगी; अतएव इसको प्रकाश करनेका मैं भाग्यवान् हुआ.

इसमें कठिन शब्दोंपर जो टिप्पणी है वह भी पूज्य महाराजने बनाई हुई है. आशा है कि, उपनिषद् जानने-वाले और संस्कृतज्ञ पुरुषोंको तो इसके पढने मात्रसेही उप-निषदाभ्यास हो जायगा अतएव यह अमृतसमान है. और जिनको अर्थोपलब्धि नहीं है, उनको भी पाठसे परम चित्त शुद्धि होगी. यदि ईश्वरइच्छा तो मैं यथा समय इसकी हिंदी टीका भी वनाके प्रकाश करनेका विचार करता हुं. इसको क्रमशः देखनेसे अंतर्गत रसिकता भान होती जायगी; और आप सहसा कहोगे कि ऐसा स्तोत्र तो अभूतपूर्व है.

इस ग्रन्थको मुद्रण करानेमें श्रीमान् मानशंकर भाई त्रिवेदीजीने जो सहाय किया है, और इसका खास मुद्रण-कर्ता श्रीमान् प्रभाशंकर पाठकजी कि जिन्होंने मुद्रण कार्य में अशुद्धि न रहजावे इस लिए अतीव परिश्रम किया है; अतएव उन दोनों सज्जनोंका मैं वडाही उपकृत हुं.

और इसके प्रकाशन कार्यमें जिन सज्जन पुण्यात्मा पुरुषोंकी ओरसे न्यूनाधिक आर्थिक सहाय दीगई है उन्होंका नाम कृतज्ञतापूर्वक यहांपर प्रकाशित करता हुं.

ब्रह्मनिष्ठ वेदांती जीवीमाई जमनामाई, ऋषीकेश यु. पी.
श्रीमान् शेठ जीवरामभाई मांडणभाई, अंजार कच्छ,
" " डायाभाई कल्याणजी, " "
" " हरजीभाई गंगदास, कुंभारीआ "
" " हरिदास विश्राम, वम्बई,
" " रणछोडदास मेघजी, अंजार कच्छ,

इत्योम् ।

अलमतिविस्तरेण.

हृषीकेश, ८ वी, अेप्रील १९३०. } आपका कृपाकांक्षी, वल्लभराम शर्म्मा.

PREFACE

Man ignorant of his true Divine Nature vainly tries to seccure happiness in the perishable objects of this illusary sense universe. He is thus caught up in the samsaric wheel of birth and death. He should always remember that the goal of life is God Realization and not money. The only way for his escape from the miseries of this mundane existence is through attainment of knowledge of Brahman, chiefly through devotion.

This book **Sree Saumya Kasisa Stotram** is written by H. H. Swami Tapovanji Maharaj, an eminent sanskrit scholar of high erudition, severe **tapas** and **adhyatmic**, Spiritual **anubhava.** It consists of 18 chapters. It contains the quintessence of 16 upanishads, 10 classical and 6 minor viz. Swe-

taswatara, Brahma Bindu, Kaivalya, Parama hamsa, Maitreyee and Tejobindu, expressed in a **stotra** form in Sanskrit Verse in praise of Lord Vishwanath of **Uttara Kasi**, Himalayas.

The famous Uttara Kasi is situated right in the centre of Himalayas. Its natural scenery is marvellously picturesque and unprecedented. The Spiritual vibrations are Soul-stirring and highly elevating. It is the best place which is specially suitable for contemplative life. Even a rank materialist and confirmed atheist will be forced to lead a life of dispassion and **tapas** of his own accord. The benign Soul-soothing, devotional influence is highly powerful. Right in the centre lies the magnificent and antique temple of Lord Vishwanath.

It seems that **Prakriti** has taken immense trouble in the natural decoration of this place to make it very facinating for Spiritual aspirants. The hearts of aspirants are filled

with exhuberant joy and without serious efforts they are taken to a high, meditative devotional mood. The **Pranava dwani** proceeding from the sacred Ganges is highly beneficial to make the mind one-pointed. In winter the peaks all around are clad with snow and the snowy silvery peaks heighten considerably the beauty and grandeur of Uttar kasi. Ishwar's whole Vibhuti is centred in the natural scenery of the Himalayan heights. Any man who visits this place is struck with a high sense of wonder and admiration. Devotion arises in his heart and he is in tune with Nature and Nature's Lord. He becomes God intoxicated.

Having seated himself amidst such gorgeous, elevating atmosphere of Uttar kasi in the temple of Lord Vishwanath and heart being filled with profound devotion, Swami Tapovanji began to compose 10 or 12 slokas of this 'Sree Saumya kasisa stotram' daily and used to recite them before Lord Vishwanath while he was spending his **chaturmasya**

there in 1929. He finished the whole stotra within 41 days.

In this connection, it will not be out of place to mention a few words on devotion. In this kaliyuga, it is extremely difficult to practise Hatha and Rajayogas. The path of devotion and devotion alone is suitable for all. It is easy too. Any man can recite the name of God. Any man can sing his praise and Glory. It is quite safe also. Though Sree Shankara had refuted jiva and Ishwar, he himself was a Bhakta. He has made several **stotras** on various Deities. Though he severely condemned the Bhakti Shastra in his **Shariric Bhashya**, he was not an opponent of the path of devotion. When devotion is fully ripe **jnana** comes by itself. The vast majority of mankind have to get knowledge through devotion.

People of devotional temperament will find a treasure in this book of Stotras. They will develop strong devotion by repeating daily the stotras. Men of **vichar** also will find

substantial, ennobling ideas for philosophical ratiocination and reflection. That is the beauty and attractive feature of this book. The abstruse long portions of the Upanishads are rendered very, very clear and expressed in a lucid style and easy language without any technicality at all. The Author's views are in accordance with the doctrine of Shree Shankara.

This book is a masterpiece in style and thought. It is full of inspiring, sublime thoughts. It will doubtless greatly benefit those who are athirst for devotion and knowledge, who care for the deeper things of life and who are earnestly searching for the true inward bliss in the subjective, eternal, pure, **Satchitananda Atma.**

OM. OM. OM.

Rishikesh,
30th March 1930. } **Swami Sivananda.**

ॐ

अर्पणम् ।

विश्वेश्वरस्य कृपया खलु तत्प्रयुक्तः
क्षुद्रोपलब्धिमकुटोऽहमकार्षमेतत् ।
तस्यार्पितश्चपदयोः स्तवकोपहारः
स्तोत्रात्मकस्सुरभिलोऽस्तु स सुप्रसन्नः ॥ १ ॥

(स्त. १८ श्लो. २५).

श्रीविश्वेश्वर की कृपासें और उसकीही प्रेरणासे
अत्यन्त कृशबुद्धियुक्त मैंने यह स्तोत्ररुप
सुगंधि पुष्पगुच्छोंका उपहार बनाया है,
और उसीकेहीचरंणोंमें अर्पण किया है,
वह परमात्मा प्रसन्न हो.

ॐ तत्सत्

कर्ता.

ॐ तत्सत्

श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्रम्

प्रथमः स्तबकः

विश्वनाथ नमस्तुभ्यं विश्वमाया विलासिने ।
काशिकेश नमस्तुभ्यं केशवाद्यर्च्चितांघ्रये ॥ १ ॥

विश्वंभर नमस्तुभ्यं विश्वविध्वंसमूर्त्तये ।
विश्वरूप नमस्तुभ्यं विश्वसृड्दर्पहारिणे ॥ २ ॥

वामदेव महादेव देवदेव जगत्पते ।
भव भक्त्या भजामि त्वद्भवच्छेदि पदांबुजम् ॥ ३ ॥

सौम्यकाशीपते तुभ्यं सौम्यमूर्त्ते नमो नमः ।
सर्वदेव नमस्तुभ्यं सर्वदैवतरूपिणे ॥ ४ ॥

गंगाधरोऽपि भगवान् गंगारोधसि वर्तसे ।
सोमसूर्याग्निनेत्रोऽपि सोमचूडश्च दृश्यसे ॥ ५ ॥

काशीपृष्ठे विहरसि विराण्मूर्त्तिरपि प्रभो ।
को वेत्ति तव माहात्म्यं त्वदन्यः परमाद्भुतम् ॥ ६ ॥

---

१ गंगां शिरसि बिभ्राणः

गिरिराजसुतापुण्यपरिपाकोऽस्तु मे गतिः ।
सुरवृक्षवृते यस्य मन्दिरे सुन्दरे स्थितिः ॥ ७ ॥

त्रिशूलरूपया शक्त्या हेरंबाद्यैश्च निर्जरैः ।
गोपकोटेश्वराभ्याञ्च संवृतं शंकरं भजे ॥ ८ ॥

वारिदाभंगलेगंगा वारिगौरं कलेवरे ।
वारणाद्रिपतिं वन्दे वारणाजिनवाससम् ॥ ९ ॥

कालकालं महाकालं कालव्यालविभूषणं ।
फालनेत्रं प्रणौमि श्रीकाशिकापतिमीश्वरम् ॥ १० ॥

भूतानामीश्वरं भस्मभूषाभूषितविग्रहम् ।
श्मशानशायिनं वन्दे जाटजूटकमस्तकम् ॥ ११ ॥

पुरत्रयनिषूदाय परमैश्वर्यधारिणे ।
परापराय रुद्राय परेशाय नमोनमः ॥ १२ ॥

करालं कालिकेशं नृकरोटीकलितस्रजम् ।
आशावासोवसानं श्रीविश्वनाथमुपास्महे ॥ १३ ॥

कालकूटाशिने तुभ्यं शैलकूटनिवासिने ।
शूलिने पालिने धन्वशालिनेऽस्तु नमो नमः ॥ १४ ॥

तुषारधवलांगोऽयं तुषारगिरिजाधवः ।
वृषाधिवाहनो हन्याद्वृषवन्द्योऽवृषद्विषम् ॥ १५ ॥

---

१ देवदारुतरुभिरावृते. २ गोपेश्वरेण कोटेश्वरेण च. ३ वारणावत नाम्नो गिरेः पतिं, तत्र निवसन्तामिति यावत्. ४ जाटजूटको जटाबन्धः ५ पापरूपिणं वैरिणम्.

अर्द्धनारीपते तुभ्यमध्वरध्वंसकारिणे ।
अघोराय नमस्साक्षादपारकरुणांवुधे ॥ १६ ॥

प्रसीद भगवन् शंभो प्रसीद वृषभध्वज ।
कुरुष्व कृपया नित्यं नृत्यमस्मन्मनोऽङ्गणे ॥ १७ ॥

त्र्यक्षोऽप्यसौ सप्तशिरा[१]श्च बिभ्रत्
सर्पस्रजं क्ष्वेलभुगष्टमूर्त्तिः ।
जेजीयते हन्त हिमाद्रि मध्ये
कपालभृत् कश्चन भिक्षुवर्यैः ॥ १८ ॥

कैलासशैले कलधौतधौतं
शैलेन्द्रकन्यामुपलालयन्तम् ।
आराध्यमानश्च सुरेन्द्रमुख्यै-
र्वाराणसीनाथमहं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

कुबेरमित्रं कुसुमेष्वमित्रं[२]
कारुण्यपात्रं करिराजपुत्रम्[३] ।
सरोजनेत्रं स्मितपश्चवक्त्रं
सदा पवित्रं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥

अस्तु मे शरणं सौम्यकाशीनाथः स्वयं प्रभुः ।
यत्कृपालेशमात्रेण मर्त्योऽमर्त्यपदं व्रजेत् ॥ २१ ॥

---

१ सप्तया जटया सह वर्तत इति सप्तं तादृशं शिरो यस्यास्ति सः
२ कुसुमेषोर्मन्मथस्य अमित्रं शत्रुम् ३ करिराजो गणेशस्सपुत्रो यस्य तम्.

विभो विश्वेश विश्वात्मन् विभाकर निभद्युते ।
विभातुमोहरजनीद्विभावो मेऽपसर्पतु ॥ २२ ॥

व्योमादि भूतानि भवत्स्वरूपं
देवादि देहाश्च भवत्स्वरूपं ।
जीवाश्च सर्वेऽपि भवत्स्वरूपम्
सर्वात्मनस्तेऽस्तु नमः पदाभ्याम् ॥ २३ ॥

त्वमेव विष्णुः कमला च दुर्गे-
त्युपास्यसे कल्पितमूर्त्तिभेदैः ।
काशीश सर्वेश्वर शर्वसर्व-
देवात्मनस्तेऽस्तु नमः पदाभ्याम् ॥ २४ ॥

शुद्धं शिवं बुद्धमबुद्धिगम्यं
ब्रह्मेति यद्वस्तु वदन्ति वेदाः ।
तत्त्वं विभो विश्वपते न तत्वं
किञ्चित्परं तेऽस्तु नमः पदाभ्याम् ॥ २५ ॥

१ द्वैत भ्रमः २ तत् त्वमिति छेदः

द्वितीयः स्तबकः ×

येन व्याप्यमिदं सर्वं सर्वसन्न्यसनेन यः ।
लभ्यतेऽलुब्धशीलेन तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १ ॥

काम्यनिष्कामकर्मभ्यां यो देवः संप्रपूज्यते ।
कर्मिभिः कर्ममर्मज्ञैस्तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ २ ॥

यदज्ञानहतामूढा भ्राम्यन्ते बहुयोनिषु ।
आत्महत्यापरिग्रस्तास्तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ३ ॥

मनोऽतिवेगवत्तस्माज्जवीयस्तरमिष्यते ।
यदेकं सत्यमत्यक्षं तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ४ ॥

यस्मिन् सति जगत्सर्वं सूत्रदेवेन धार्यते ।
नित्य चैतन्यरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ५ ॥

यच्चलं निश्चलं चैव निकटस्थं च दूरगम् ।
अन्तर्बहिश्च संपूर्णं तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ६ ॥

स्वात्मायः सर्वभूतानामाश्रयत्वेन वीक्ष्यते ।
विद्वद्भिर्वीतधीदोषैस्तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ७ ॥

×अस्मिन् स्तवके ईशकेनोपनिषदोर्विषयास्संग्रहेण संग्रथिताः तथा च तृतीये चतुर्थे च काठकस्य, पञ्चमे प्रश्नस्य, षष्ठे मुण्डकस्य, सप्तमे माण्डूक्य तैत्तिरीययोः, अष्टमे ऐतरेयस्य च विषयास्संक्षेपतस्समुद्धृताः॥

१ पुरुषेणेति शेषः २ आत्महत्या शुद्धात्मनि अशुद्धत्वाध्यासः ३ अतीन्द्रियम् ४ यदात्मतत्वमिति शेषः ५ उक्तात्मस्वरूपाय.

यन्मयं साति यद्बोधे विश्वं पश्यन्ति सूरयः ।
निश्शुचश्च विराजन्ते तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ८ ॥

शुद्धं सर्वत्र संव्याप्तं कायसंबन्धवर्जितम् ।
दृशिमात्र स्वरूपं यत्तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ९ ॥

धर्माधर्माद्यसंस्पृष्टः प्रजेशानां[1] यः प्रभुः ।
स्वयंभूः परिभूश्चैव तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १० ॥

उपास्त्या कर्मणावापि यत्तत्वं नोपलभ्यते ।
ज्ञानगम्याय नित्याय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ११ ॥

ध्यायिभिर्ध्यायमानं यत् प्राप्यमाणश्च यत्पदम् ।
कार्यब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १२ ॥

चक्षुःश्रोत्रादीन्द्रियाणि तत्तत्कार्यकराणि वै ।
यद्देवानुगृहीतानि तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १३ ॥

श्रोत्रादेरपि यं देवं श्रोत्रादिमनुदृश्य हि ।
महान्तो यन्ति निर्वाणं तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १४ ॥

यत्र व्रजन्ति नो चक्षुर्वाङ्मनांसि मनागपि ।
न ज्ञातं यच्चनाज्ञातं तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १५ ॥

व्यज्यते यन्नवाचा यद्वाचं व्यञ्जयति स्फुटम् ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १६ ॥

मनुते न मनोयत्तु मनुते येन मानसम् ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १७ ॥

---

१ प्रजापतीनाम्.

श्रोत्रेण श्रूयते यन्न श्रोत्रं येन शृणोति वै ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १८ ॥

चक्षुषा दृश्यते यन्न येन चक्षुःप्रपश्यति ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १९ ॥

प्राणेन चेष्टते यन्न येन प्राणः प्रचेष्टते ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ २० ॥

द्रष्ट्रा न दृश्यते यद्वै दृश्यते चाप्रपश्यता ।
शुद्धचिन्मात्ररूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ २१ ॥

यस्सर्वबुद्धिवृत्तीनां साक्षित्वेन प्रकाशते ।
शुद्धचिन्मात्ररूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ २२ ॥

नियम्यदैत्यान्[१] निजसेतुभेतॄन्
सुरप्रियो यो हि जगत्प्रशास्ति ।
वृद्धायमापुश्च महेन्द्रमुख्या
महत्पदं तं भज विश्वनाथम् ॥ २३ ॥

विद्युत्प्रकाशायित[२] चित्प्रकाश-
श्चक्षुर्निमेषायित लोकसर्गः ।
इन्द्रादिगर्वापहरश्च विश्व-
मूर्त्तिश्च यस्तं भज विश्वनाथम् ॥ २४ ॥

---

१ स्वकल्पितधर्मभेदकान्. २ विद्युत् प्रकाशवत् युगपद्विश्वव्यापकं चिज्ज्योतिरिति भावः

तपश्च शान्तिस्सकलाश्च विद्या-
स्सत्यश्च यस्य प्रतिपत्तिहेतुः ।
सत्यं सकृद्रासुरमात्मविद्या
मूर्त्तिर्यतस्तं भज विश्वनाथम् ॥ २५ ॥

---

१ सर्वदा.

तृतीयः स्तबकः

प्रतिष्ठा जगतः साक्षादग्निरूपेण यः प्रभुः ।
यतश्च कर्मणां सिद्धिर्विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १ ॥

अस्ति नास्तीति यद्देवे विचिकित्सन्त्यपण्डिताः
नित्यसिद्धस्तु विदुषां विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ २ ॥

देवैरपि महाप्राज्ञैर्योऽस्मिन् संशयितं पुरा ।
दुर्विज्ञेयस्तु सूक्ष्मत्वाद्विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ३ ॥

पुत्रपौत्रसमूहेन प्राज्यराज्यश्रियापि वा ।
प्राप्तुं न शक्यते यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ४ ॥

योगक्षेमनिषक्तानां प्रेयः पथविचारिणाम् ।
क्रोशकोटिविदूरः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ५ ॥

त्यक्त्वा कामान् सुष्ठु धीरैः श्रेयः प्रार्थितया हृदि ।
पूज्यते भाव्यते यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ६ ॥

श्रृण्वन्ति बहवो यन्न श्रुत्वापि न विदन्ति च ।
वक्तापि दुर्लभो यस्य विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ७ ॥

तर्कागम्या हि यद्बुद्धिर्देशिकोक्त्यैव गम्यते ।
बहुधा चिन्त्यमानः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ८ ॥

---

१ विराड्रूपेण जगत् प्रतिष्ठात्वमग्नेः

आब्रह्मभुवनाद्यो हि विरक्तस्साधनान्वितः ।
तेनैव दृश्यते यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ९ ॥

अध्यात्मयोगयुक्तेन चेतसा योऽनुचिन्त्यते ।
गुहाहितनिगूढः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १० ॥

श्रुत्या मत्या च यं लब्ध्वा मोदते मोदवारिधौ ।
मोदनीयशरीरः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ११ ॥

पुण्यपापात्पृथग्भूतः कार्यकारणतश्च यः ।
कालत्रयाच्च शश्वच्छ्री विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १२ ॥

यत्पदं गीयते वेदैः यत्पदं ब्रह्मचर्यया ।
दिदृक्षन्ते महान्तः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १३ ॥

प्रणवैकप्रकाश्यो यस्तत्प्रतीकश्च यः प्रभुः ।
परापरब्रह्मरूपो विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १४ ॥

शरीरे हन्यमानेऽपि न च हन्येत योऽजनिः ।
शाश्वतश्शाश्वदाभः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १५ ॥

कर्तृता कर्मता चैव यस्मिन्नध्यस्यते खलैः ।
वस्तुतोऽद्वैत मूर्त्तिः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १६ ॥

अणुभ्योऽणुतरो यश्च महद्भ्योऽपि महत्तरः ।
शोकराशिविमुक्तः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १७ ॥

आस्तेयातीव यः शेते विषीदति च हृष्यति ।
विरुद्धधर्मा विश्वात्मा विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १८ ॥

---

१ विद्वानिति शेषः

निर्वपुर्वपुरध्यक्षो नित्यनिर्वृतविग्रहः ।
व्योमवद्व्यापको यः श्रीविश्वनाथस्समे गतिः ॥ १९ ॥

वेदवेदांग पाठेन प्रज्ञया प्राभवेण वा ।
योऽयमात्मा न लभ्यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ २० ॥

प्रेम्णा संप्रार्थ्य संप्रार्थ्य येन संधीयते भृशम् ।
तेनैव लभ्यते यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ २१ ॥

अशनं यस्य देवस्य ब्रह्मक्षत्रादिकं जगत् ।
उपदंशस्तु मृत्युः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ २२ ॥

देहे रथे बुद्धि नियन्तृके यो
रथित्वमासाद्य चरत्यजस्रम् ।
भोक्ताऽपि सोऽदभ्रविचित्रलील-
स्त्वमेव विश्वेश निरञ्जनोऽपि ॥ २३ ॥

क्षतुस्संदश्वा इव यस्य वश्या-
न्यक्षाणि तत्प्राप्यमरूपरूपम् ।
वन्दे तमव्यक्तपरं पुराण-
मध्वावधिं[2] विष्णुमुमेशमारात् ॥ २४ ॥

क्षुरस्यधारावदतीव दुर्गं
यन्मार्गमाहुः कवयो विनिद्राः ।
अशब्दमस्पर्शमनध्रुवं तं
भक्त्या भजे भव्यनिधिं मृडेशम् ॥ २५ ॥

---

१ अनुध्यायते. २ अध्वनः संसारगतेरवधिम्.

चतुर्थः स्तबकः

पराग्र्थसमर्थानि ससर्जाक्षाणि यः प्रभुः ।
अन्तर्नदृश्यते तस्माद्विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १ ॥

अध्रुवं कामजालं हि विहाय विगताशिषः ।
ध्रुवेच्छया भजन्ते यं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ २ ॥

रूपादि विषयान् सर्वान् येन चिद्धातुना जनाः ।
विजानन्ति दृगात्मश्री विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ३ ॥

स्वाप्निकं जाग्रतं चैव वस्तुजातंप्रकाशयन् ।
जागर्ति सर्वदा यः श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ४ ॥

प्राणादिधारकं जीवं प्रणिधाय यदात्मना ।
अभयं यान्ति सन्तः श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ५ ॥

सूत्रात्मा सूत्रधारोऽसौ जगत् सर्गादिनाटके ।
यस्मात् संपद्यते साक्षाद्विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ६ ॥

अरण्योर्निहितो यस्तु याज्ञिकैस्समुपास्यते ।
आश्रयाशशरीरः श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ७ ॥

यस्मादुदेति सविता यस्मिन्नेव दिने दिने ।
अस्तमेति जगत्प्राणं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ८ ॥

---

१ शब्दादि बाह्यविषयप्रकाशकानि २ मोक्षेच्छया ३ आश्रयाशः अग्निः

ब्रह्मयज्ञासतेऽधर्मिं देहधर्मेण दुर्धियाम् ।
नास्ति नानाऽद्वितीयं श्री विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ९ ॥

यस्मिन्नानात्वमापाद्य मायाविभ्रान्तदृष्टयः ।
मृत्युचक्रे भ्रमन्ति श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १० ॥

योऽङ्गुष्ठपरिमाणस्सन् मर्त्यानां हृदयांबुजे ।
निर्धूमवह्निवद्भाति विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ११ ॥

प्रसन्नांभो यथातादृक् प्रक्षिप्तं शुद्धवारिणि ।
तद्वद्विद आत्मास्याद्विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १२ ॥

एकादशद्वारयुते पुरे यः प्रतितिष्ठति ।
राजवत्सूर्यसंकाशं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १३ ॥

प्राणापानौ नयत्यूर्ध्वमधश्चान्तरवस्थितः ।
देवाश्चोपासते यं श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १४ ॥

यस्य विस्रंसने देहो निश्चेष्टः काष्ठखण्डवत् ।
प्राणस्वामिनमाराध्ये विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १५ ॥

प्राणापानौ यमाश्रित्य विधत्तः स्वस्वजीवनम् ।
विज्ञानघनमक्षयं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १६ ॥

निर्मिमाणो बहून् कामान् करणोपरमेऽपि यः ।
जागर्ति शश्वद्रूपं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १७ ॥

यथाग्निर्दाह्यभेदेन बहुर्भवति यस्तथा ।
देहेषु देहितामेति विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १८ ॥

---

१ तद्ब्रह्मरूपिणम् २ चक्षुरादयः

रूपंरूपमनुप्राप्य तत्तत्सारूप्यमृच्छति ।
यः परात्मा यथा वायुर्विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १९ ॥

अक्षिदोषैर्यथा सूर्यो लोकदुःखैस्तथैव यः ।
लिप्यते नहि भूतात्मा विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ २० ॥

नित्यानामपि यो नित्यश्चेतनानाञ्च चेतनः ।
सर्वज्ञं सर्वबुद्धिस्थं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ २१ ॥

ऊर्द्धमूलमधः शाखं छिनत्त्यश्वत्थमृद्धधीः ।
व
यत्कटाक्षकुठारेण विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ २२ ॥

निरीक्ष्य वज्रोद्यतपाणिमीश्वरं
यथा भुजिष्या[1]ऽशिखि[2] भास्वदादयः ।
विभक्त कृत्येषु तथैव यद्भयात्
चरन्त्यजस्रं कुरु तद्धरे रतिम् ॥ २३ ॥

बुद्धीन्द्रियाणां मनसश्चबुद्धे-
रुच्चेष्टनं श्रेष्ठगतिर्हि योगः ।
निद्ध्या[3]यते तेन य ईशिभाक्तिं
तस्मिन्नरूपे कुरु सत्स्वरूपे ॥ २४ ॥

उपासकैर्यः क्रमशोऽधिगम्य-
स्सुषुम्नया मङ्क्षु च वर्ष्मणो[4] यः ।
मुञ्जादिषीकेव विविक्तधीभि-
र्निष्कृष्यते तं भजकाशिकेशम् ॥ २५ ॥

---

१ किंकराः २ अग्निसूर्यादयः ३ दृश्यते ४ शरीरात्.

पञ्चमः स्तबकः

श्रद्धया ब्रह्मचर्येण गुरुशुश्रूषणेन च ।
ब्रह्मयन्बुध्यते धीरैस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १ ॥

प्रजापतिशरीरस्सन् प्रजाः कामयते प्रभुः ।
तपश्च तप्यते दिव्यं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ २ ॥

अग्नीषोमौ[1] सृजत्यादौ यः प्रजाकरणेच्छया ।
अन्नान्नभूतौ भूतेशं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ३ ॥

सूर्यात्मना सर्वे लोकचक्षुस्तपति रश्मिवान् ।
प्राणाश्रयश्च यो देवस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ४ ॥

संवत्सरं षट्चरणं[2] द्वादशाकृति[3] संयुतं ।
कालमूर्त्तिं विधत्ते यस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ५ ॥

मासो दिनं ततश्चान्नमन्नाद्वीर्यं ततः प्रजाः ।
यत इत्थं प्रजोत्पत्तिस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ६ ॥

प्राणात्मना येन सर्वम्[4]प्राणमेतद्विधार्यते ।
पञ्चवृत्ति विभक्तन तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ७ ॥

वरिष्ठप्राणदेवं यं प्राणास्सर्वेऽनुयान्ति वै ।
स्वराजं मक्षिकायद्वत्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ८ ॥

---

१ सूर्याचन्द्रमसौ २ चरणानिऋतवः ३ आकृतयो मासाः ४ शरीरम्.

अग्निरर्कश्च पर्जन्यो मघवाननिलोऽपि यः ।
प्राणात्मना जगत्सर्वं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ९ ॥

यस्मादुत्पद्यते प्राणश्छायावदनृताकृतिः ।
परस्मादक्षरात्त्र्यक्षं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १० ॥

नियुङ्क्ते प्राणरूपस्सन्नपानादीन् पृथक् पृथक् ।
सम्राडधिकृतान् यद्वत्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ११ ॥

एकोत्तरशतं नाड्यस्सशाखा निस्सृताहृदः ।
व्यानाख्योऽटतियस्तत्र तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १२ ॥

इन्द्रियोपरमे भानु[1] रश्मिवद्धृदि[2] दृश्यते ।
येन स्वप्नजमाहात्म्यं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १३ ॥

यदा निरुध्यते चित्तं तैजसा सुप्तिमास्थितः ।
योऽश्नुते सुखमक्षय्यं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १४ ॥

विज्ञानात्मा सहप्राणैर्देवै[3]र्भूतैश्च संविशेत् ।
शान्ते स्वात्मनि यत्तुर्ये तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १५ ॥

ओंकारायतनेनैतत् परश्चापरमेव च ।
ब्रह्मयद्भाव्यते भव्यैस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १६ ॥

ओंकारेण त्रिमात्रेण ध्यायी निष्पाप पश्यति ।
ब्रह्मलोकेन यद्ब्रह्म तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १७ ॥

---

१ यथास्तमये भानोरश्मय एकी भवन्ति तद्वदित्यर्थः २ नाडीशयेन पित्तेन ३ देवा अग्न्यादयः भूतानि पृथिव्यादीनि.

हृच्छयो निष्कलः स्यात्मा कलावानिव लक्ष्यते ।
अविद्याऽवद्यबुद्ध्यैस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १८ ॥

प्रभवन्ति कला यस्माद्यस्मिन्नेवापि यन्ति च ।
निर्विशेषे परे तत्वे तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १९ ॥

यच्चिति व्यतिरेकेण कलाः कालत्रयेऽपि च ।
न तिष्ठन्ति ततो मिथ्या तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ २० ॥

विज्ञानं क्षणिकं प्राहुश्शून्यमित्यपरे जनाः ।
कलाधारं यमात्मानं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ २१ ॥

अनित्यो गुण इत्याहुर्भूत धर्मस्तथापरे ।
चैतन्यं यत्कलाधारं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ २२ ॥

प्राणं तथास्तिक्यमतिं खवायू
ज्योतिर्जलं भूमिमथेन्द्रियञ्च ।
मनश्च तेनेऽतनुदृग्यईश-
स्स विश्वनाथो भियमुच्छिनत्तु ॥ २३ ॥

अन्नं बलञ्चैव तपश्च मन्त्राः
कर्माथ लोकाश्च ततोऽभिधानम् ।
इत्थं कलाष्षोडश यस्ससर्ज
स विश्वनाथो भियमुच्छिनत्तु ॥ २४ ॥

स्वकारणे यत्र कलास्समग्रा
रूपञ्च नामात्मविदां विहाय ।
एकीभवन्त्यंबुनिधौ यथाप-
स्स विश्वनाथो भियमुच्छिनत्तु ॥ २५ ॥

षष्ठः स्तबकः

यत्स्वरूपं न निर्णेतुं देशिकोपनतिं विना ।
शक्यते पण्डितेनापि शं करोतु स शंकरः ॥ १ ॥

ज्ञाते यस्मिन्जगत्सर्वं ज्ञातं भवति भावुकः[1] ।
सर्परज्जुवदाधारश्शं करोतु स शंकरः ॥ २ ॥

परविद्यैव यत् प्राप्तौ साधनं कर्मकोटयः ।
कुण्ठी भवन्ति यस्याग्रे शं करोतु स शंकरः ॥ ३ ॥

दृश्य ग्राह्येतरो[2] गोत्रवर्णहीनश्च यो विभुः ।
चक्षुः श्रोत्रविनिर्मुक्तश्शं करोतु स शंकरः ॥ ४ ॥

ऊर्णनाभिर्यथा तन्तून् सृजते संहरत्यपि ।
एवं यस्सृजते लोकान् शं करोतु स शंकरः ॥ ५ ॥

तपसा[3] चीयमानाद्वै यस्मात्सूत्रादिकं जगत् ।
प्रादुर्भवति विश्वेशश्शं करोतु स शंकरः ॥ ६ ॥

कर्मणा बध्यते जन्तुस्त्यागेन तु विमुच्यते ।
विमोक्षरूपो यस्साक्षाच्छं करोतु स शंकरः ॥ ७ ॥

धर्माधर्मौ समुत्सृज्य यत्कृपानौकया बुधः ।
उत्तितीर्षेद्भवांभोधिं शं करोतु स शंकरः ॥ ८ ॥

---

१ मंगलतनुः. २ अदृश्यः अग्राह्यश्च ३ आलोचनात्मकेन.

अविद्या तमसि भ्रान्ता मूढाः पण्डितमानिनः ।
पीड्यन्ते यत्पदभ्रष्टाः शं करोतु स शंकरः ॥ ९ ॥

इष्टापूर्त्तं श्रेष्ठमाहुर्ये जनाः कामकामिनः ।
भ्रमन्ति ते पदभ्रष्टाश्शं करोतु स शंकरः ॥ १० ॥

तपस्यन्तो वनान्तेषु भिक्षवश्चादिजोन्तिकम्¹ ।
व्रजन्ति यत्पदभ्रष्टाश्शं करोतु स शंकरः ॥ ११ ॥

कर्मनिष्पादिते लोके निर्विण्णे यद्विवित्सया ।
उपेयाद् गुरुपादाब्जं शं करोतु स शंकरः ॥ १२ ॥

उपसन्नाय यत्तत्वं शमादिगुणशालिने ।
ब्रूयते देशिकेन्द्रेण शं करोतु स शंकरः ॥ १३ ॥

अग्निस्फुलिंगवद्भावा निस्सरन्ति यतोऽक्षरात्² ।
सर्वेऽपि यत्र लीयन्ते शं करोतु स शंकरः ॥ १४ ॥

अन्तर्बहिश्च संपूर्णो मनः प्राणादिवर्जितः ।
अमूर्तो दिव्यमूर्त्तिर्यश्शं करोतु स शंकरः ॥ १५ ॥

द्युलोको मस्तकं यस्य चक्षुषीन्दुदिवाकरौ ।
दिशः श्रोत्रे पदं पृथ्वी शं करोतु स शंकरः ॥ १६ ॥

यस्माद्भवन्ति भूतानि वनपर्वतसागराः ।
यस्मात् स्रवन्ति गंगाद्याः शं करोतु स शंकरः ॥ १७ ॥

प्रणो धनुश्शरोह्यात्मा शरव्यं ब्रह्मयत्परं ।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तः शंकरोतु सशंकरः ॥ १८ ॥

---

१ आदिजा हिरण्यगर्भः २ ओंकारः

शब्दजालं समुत्सृज्य रमन्ते यत्परात्मनि ।
निस्पृहा निखिलाधारे शं करोतु स शंकरः ॥ १९ ॥

पिण्डिकायामरा यद्वद्भ्रमन्यो यत्र संहताः ।
तत्रास्ते बहुधा नृत्यन् शं करोतु स शंकरः ॥ २० ॥

यस्मिन् दृष्टे नष्टकर्मा छिन्नग्रन्थिरसंशयः ।
मृत्युमुक्तो भवेन्मर्त्यः शं करोतु स शंकरः ॥ २१ ॥

सूर्यसोमौ तथा विद्युद्यं न भासयितुं क्षमाः ।
यद्भासैते प्रकाशन्ते शं करोतु स शंकरः ॥ २२ ॥

वृक्षे समाने विहगौ निविष्टा-
वेकोऽश्नुते तत्फलमुच्चगोऽन्यः ।
पश्यन्ननश्नन्न भियस्सुखात्मा
तमीश्वरं सौम्यपुरीशमीडे ॥ २३ ॥

यत्सत्यवादेन सताधिगम्यं
संगम्य यन्नाति वदन्ति विज्ञाः ।
यत्क्रीडमात्मक्षतमं समर्च्य
मर्त्योऽभ्युदेत्यस्तु गतिस्स शंभुः ॥ २४ ॥

कामैषिभिश्च चलरिक्तनरैरलभ्य-
स्सन्यासहीनतपसापि न लभ्यते यः ।
यल्लब्धितस्तु सुधियस्सरितो यथाब्धिं
यं संविशन्ति विकलास्तमुमेशमीडे ॥ २५ ॥

---

१ विलीनकलाः

सप्तमः स्तबकः

प्रणवेनाभिधेयं यत् प्रणवैककलेवरम् ।
प्रणवेनोपलक्ष्यश्च तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १ ॥

अयमात्मा परंब्रह्म ब्रह्मचैतच्चराचरं ।
चतुश्चरणसंयुक्तं तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ २ ॥

जाग्रत् स्थानो वहिः प्रज्ञः स्थूलान् भुङ्क्ते हि योऽङ्गवान् ।
विश्वात्मना विश्वमूर्त्तिं तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ३ ॥

स्वप्नस्थानोऽवहिः प्रज्ञः सूक्ष्मान् भुङ्क्तेऽथ योऽङ्गवान् ।
तैजसी भूयविश्वेशं तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ४ ॥

सुप्तिस्थानो घनप्रज्ञः सुखं भुङ्क्ते च यः स्वयम् ।
प्राज्ञनाम्ना प्रबोधात्मा तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ५ ॥

अदृश्योऽव्यवहार्यो यश्शिवश्शान्तश्च निर्द्वयः ।
अप्रज्ञश्शुद्धतुर्यात्मा तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ६ ॥

अकारेण तथोकारमकाराभ्याञ्च संस्थितः ।
ओंकारात्मा यस्तुरीयस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ७ ॥

ओंकारात्मा महानिन्द्र[1]ः प्रज्ञां प्रज्ञानमेव च ।
यो ददाति तदर्थिभ्यस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ८ ॥

अन्नपाने श्रियंगाश्च छात्रान् कीर्तिञ्च कीर्तितः ।
यो ददाति तदर्थिभ्यस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ९ ॥

---

१ परमेश्वरः

यद् व्याहृत्यात्मना पाङ्क्त स्वरूपेण च चिन्त्यते ।
चिन्तकैर्ब्रह्म निश्चिन्तैस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १० ॥

सत्योक्त्या धर्मचारेण स्वाध्यायाध्ययनेन च ।
यद्ब्रह्म सेव्यते सद्भिस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ११ ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्मबुद्ध्वाविपश्चितः ।
भुञ्जते सकलान् भोगान् तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १२।

व्योमवातादिकं सर्वं संभूतं भूतभौतिकम् ।
प्रत्यगात्मात्मनो यस्मात्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १३ ॥

अन्नादि पञ्चकोशेभ्यो योऽन्य आनन्द आन्तरः ।
ब्रह्म[२]पुच्छं प्रतिष्ठा च तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १४ ॥

यद्ब्रह्म सद्धनं मूढो वेदयोऽसच्छरीरकम् ।
असन्नेव भवत्येष तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १५ ॥

जगत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशज्जीव भावभृत् ।
कामि[३]ता च तप[४]स्वीयस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १६ ॥

सच्चत्यच्चाभवद्ब्रह्म मूर्तामूर्तात्मकं जगत् ।
जडाजडविभिन्नं यत्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १७ ॥

रसवद्ब्रह्म यल्लब्ध्वा बुधः पिबति यद्रसम् ।
रसं बाह्यं बहिष्कृत्य तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १८ ॥

---

१ चिन्ताऽत्र विजातीयवृत्तिः २ आनन्दमयात्मकस्य पक्षिणः पुच्छं ३ बहुस्यां प्रजायेय इति कामयमानः ४ जगद्रचनादि विषयकालोचनरूपं तपः कुर्वाणः

अदृश्येऽनाश्रयेऽनात्म्ये यस्मिन्ब्रह्मणि निष्ठया ।
अभयं विन्दते विद्वान् तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १९ ॥

योऽल्पमेकरसे यस्मिन्नुदरं कुरुतेऽन्तरम् ।
सभयं विन्दते बालस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ २० ॥

भिया यस्माद्वाति वायुस्सूर्याग्नी तपतोऽनिशम् ।
धावतो मृत्युरिन्द्रश्च तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ २१ ॥

यदानन्दमहांभोधेर्विप्रुषो हि वपुष्मताम् ।
ब्रह्मादीनां य आनन्दास्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ २२ ॥

संप्राप्य यद्ब्रह्मवचो विदूर-
मानन्दभाजोऽति तरन्ति भीतिम् ।
श्रेयोऽहसी निर्दहतश्च नैतान्
सोदेतु चित्ते मम शंभुमूर्त्तिः ॥ २३ ॥

शाखानिशाधीश वदन्तरात्मा
योऽन्नादि कोशैरुपलक्ष्यतेऽद्धा ।
समाधि नोद्यत्तपसेन्द्रियाणां
सोदेतु चित्ते मम शंभुमूर्त्तिः ॥ २४ ॥

यद्ब्रह्मतामेत्य बुधोऽभिगाय-
त्यन्नं तथात्ताहमहो विचित्रम् ।
तयोश्च कर्त्ताप्यहमेव सर्वं
सोदेतु चित्ते मम शंभुमूर्त्तिः ॥ २५ ॥

---

१ उदपिअरमल्पं अल्पमपीत्यर्थः २ इन्द्रियाणां समाधानरूपेण तपसा.

अष्टमः स्तबकः

यः परात्मैक एवासीदग्रे किञ्चन नाभवत् ।
अन्यद्वस्तु सदाखण्डं काशीशं तमुपास्महे ॥ १ ॥

य ऐक्षत सृजे लोकानितिलोकान् ससर्जे च ।
अंभोमुखान् लोकपांश्च काशीशं तमुपास्महे ॥ २ ॥

अग्न्यादि लोकपालानां स्थानानि च पितामहः ।
पुरुषे निरणैषीद्यः काशीशं तमुपास्महे ॥ ३ ॥

देहे मुखमधिष्ठानमग्नेर्वायोश्च नासिके ।
रवेश्च नेत्रे यश्चक्रे काशीशं तमुपास्महे ॥ ४ ॥

दिशां तु कर्णौ शुभ्रांशोर्हृदयश्च महाप्रभुः ।
योऽथनाभिं व्यधान् मृत्योः काशीशं तमुपास्महे ॥ ५ ॥

यो लोक लोकपालेभ्यस्सृष्ट्वान्नञ्च पृथग्विधम् ।
प्राणेनाग्राहयद्धाता काशीशं तमुपास्महे ॥ ६ ॥

मूर्द्धानं प्रविदार्यैं तत् कार्यकारणसंहतिम् ।
प्रापद्यत च यः स्रष्टा काशीशं तमुपास्महे ॥ ७ ॥

विद्यतिर्नोन्दनश्चेति गीयते वेदपारगैः ।
यत्प्रवेशस्तुतिर्भक्त्या काशीशं तमुपास्महे ॥ ८ ॥

---

१ द्युलोकः द्युलोकात् परस्ताद्ये महरादयो लोकास्ते चांभरशब्दे भण्यन्ते।

तथा प्रविष्टो यस्साक्षाज्जीवभावेन वेश्मसु ।
त्रिषु संक्रीडते नित्यं काशीशं तमुपास्महे ॥ ९ ॥

जाग्रदाद्यभिमानेन संसरन् तद्गुणार्दितः ।
गुरूक्त्यां ब्रह्म यः पश्येत् काशीशं तमुपास्महे ॥ १० ॥

गर्भबालजरत्त्वादि चक्रेऽस्मिन् जीवनामभृत् ।
योऽयं भ्रान्त्या बंभ्रमिति काशीशं तमुपास्महे ॥ ११ ॥

अविद्याजालकं भित्वा श्येनवत् यत्प्रबोधतः ।
निर्मुक्तो निश्चरेत् कश्चित् काशीशं तमुपास्महे ॥ १२ ॥

अविद्याकामकर्माणि विभिद्य विबुधाग्रणीः ।
यंद्भवत्यात्मभेदे श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १३ ॥

कोऽयमात्मेति संसाराद्व्याविवृत्सुभिरात्मनि ।
अन्विष्यतेऽन्वहं यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १४ ॥

चक्षुर्भूतेन मनसा नानारूपाणि पश्यति ।
प्रत्यात्मगात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १५ ॥

श्रोत्रभूतेन मनसा नानाशब्दान् शृणोति च ।
प्रत्यगात्मात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १६ ॥

घ्राणभूतेन मनसा गन्धान् जिघ्रत्यनूनकान् ।
प्रत्यगात्मात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १७ ॥

वाणीभूतेन मनसा वक्तव्यं व्याकरोति च ।
प्रत्यगात्मात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १८ ॥

---

१ यद्ब्रह्मभवति तद्ब्रह्मरूपिणं काशीशमिति संबंधः २ देहपाते ३ सर्वान्.

जिह्वाभूतेन मनसा जानाति विविधान् रसान् ।
प्रत्यगात्मात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १९ ॥

संज्ञानाज्ञानविज्ञान प्रज्ञानानि च शेमुषी ।
यद्ब्रह्मणोऽभिधाः श्रीमत् काशीशं तमुपास्महे ॥ २० ॥

दृष्टिर्धृतिश्चमननं मनीषाजूतिसंस्मृती ।
यद्ब्रह्मणोऽभिधाः श्रीमत् काशीशं तमुपास्महे ॥ २१ ॥

संकल्पोऽध्यवसायोऽसुस्तृष्णा स्त्रीसंगमस्पृहा ।
यद्ब्रह्मणोऽभिधाः श्रीमत् काशीशं तमुपास्महे ॥ २२ ॥

ब्रह्मात्वमद्रीशभिदद्रिशायिन्
प्रजाधिभूश्चादितिजास्त्वमेव ।
प्रज्ञातनुस्त्वं हि जगत् प्रतिष्ठा
ब्रह्मात्मनेतेऽस्तु नमो नमस्ते ॥ २३ ॥

त्वमेव खं वायुरथानलश्च
त्वमेव पाथः पृथिवी त्वमेव ।
प्रज्ञातनुस्त्वं हि जगत् प्रकाशो
ब्रह्मात्मने तेऽस्तु नमो नमस्ते ॥ २४ ॥

त्वमेव गावस्तुरगानगाश्च
खगाश्च यत् किञ्चिदिदं समग्रम् ।
प्रज्ञातनुस्त्वं हि जगद्बिभर्षि
ब्रह्मात्मनेतेऽस्तु नमस्सहस्रम् ॥ २५ ॥

---

१ संज्ञानादयः अन्तःकरणवृत्तिभेदाः २ उपलक्षकाणि. ३ अद्रीभिदिन्द्रः ४ प्रजापतिः ५ यतस्त्वं प्रतिष्ठा प्रकाशत्वेन (सत्तास्फूर्तिरूपेण) जगद्बिभर्षि धारयसि ततस्त्वमेवेदं समग्रमिति संवन्धः

नवमः स्तबकः *

उद्गीथवर्णे परमे परात्मा
श्रुत्येकसारे च गुणोपजुष्टे ।
उद्गातृवर्यैस्समुपास्यते य-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १ ॥

प्राणात्मनाऽध्यात्ममथाधिदैवं
सूर्यात्मना चाक्षर सुप्रतीके ।
उद्गीथवित् पश्यति यं हि देवं
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ २ ॥

ज्योतिर्मयश्मश्रुकचोऽर्कबिंबे
कञ्जेक्षणस्तिष्ठति योगिगम्यः ।
उन्नाम भृद्योय मृगादि गेष्ण-
स्तमाश्रये सौम्य पुराधिनाथम् ॥ ३ ॥

हृन्मन्दिरान्तः स्थितमात्मदेव-
मानर्चयं भूदिविषत् कुमाषैः ।
उषस्तिराधोरणे भुक्तशेषै-
स्तमाश्रये सौम्य पुराधिनाथम् ॥ ४ ॥

---

* नवमे दशम एकादशे च स्तवके छान्दोग्यस्थानां, द्वादशे त्रयोदशे चतुर्दशे च बृहदारण्यकस्थानाञ्च विषयाणां संग्रहः कृतः

१ रसतममत्वादि गुणविशिष्टे २ सौम्यपुरं सौम्यकाशीपुरम् ३ ओंकाररूपे श्रेष्ठतरप्रतीके. ४ छान्दोग्यप्रसिद्धः कश्चिदृषिः ५ आधोरणो हस्त्यारोहः

यः पञ्चसप्तापि च भक्तयस्त
द्युक्तस्य साम्नो य उपासितॄणाम् ।
तत्तद्धियाराति फलञ्च तत्तत्
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ५ ॥

यज्ञादिभिः कृच्छ्रमुखैस्तपोभि-
र्नापैतियं नैष्ठिक[1]चर्यया वा ।
लोकस्तु लोको[2] भवतीव धर्मै-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ६ ॥

तुर्याश्रमी तुर्यपदे हि यस्मिन्
धर्मोज्झिते ब्रह्मणि संस्थितस्सन् ।
अमृत्युभावं समुपैति शश्व-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ७ ॥

छन्दांसि सारो भुवि भूर्भुवःस्व-
स्तत्रापि तेषु प्रणवोऽखिलात्मा ।
अग्राहि धात्रा स तु यत् प्रतीक-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ८ ॥

आदित्यगात्रस्सुरमाक्षिकत्व-
मध्यस्य सद्धीभिरुपास्यते यः ।
दिवादयो वंशमुखा हि यत्र
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ९ ॥

---

१. नैष्ठिक ब्रह्मचर्येण २. पुण्यलोकवान्.

गायत्र्युपाधेः पुरुषस्य यस्य
पादोऽस्ति सर्वं जगदात्मनिष्ठम् ।
पादत्रयं वैकृतदूरदूरं
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १० ॥

श्रोत्राक्षिवाक् प्राणमनोऽभिधानै-
र्द्वाःस्थैर्निरुद्धं नृपतेरिवैतत् ।
यद्ब्रह्मणो हर्म्यमगम्यमस्मा-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ११ ॥

यज्ज्योतिषो लिंगमिहोष्णिमांगे
कर्णापिधाने चरवोऽन्तरंगे ।
यश्श्रूयते स्यन्दननिःस्वनाभ-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १२ ॥

यज्जांहि विश्वं यदनं च यल्लं
तस्मादिदं सर्वमुपास्यते ज्ञै ।
ब्रह्मेति यत् संयत शेमुषीकै-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १३ ॥

मनोमयं भाकृति सर्वं कर्म-
कामादि च प्राण कलेवरं च ।
ब्रह्मेति विद्भिः क्रियते क्रतुर्य-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १४ ॥

---

१ अविकारीति भावः २ अन्तःशरीरे ३ विद्वद्भिः

हृत् पुंडरीकांतरणीय आस्ते
श्यामाकतस्सर्षपतोऽपि वा यत् ।
ज्यायो दिवो ब्रह्म तथान्तरिक्षा-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १५ ॥

कोशाकृतिं यं परिकल्प्य केचित्
पुत्रस्य दीर्घायुरभीप्सयैव ।
ध्यायंति जापोपेहितं[1] कुबुघ्नं[2]
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १६ ॥

यद् ब्रह्मबुद्ध्या मनसोऽभ्युपास्य
श्चतुष्पदस्य क्रियतेऽभियुक्तैः ।
वाक्प्राणचक्षुः श्रवणैरुमेशं
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १७ ॥

यद्ब्रह्मबुद्ध्या खमुपास्यतेऽधि
दैवं चतुष्पादनलानिलाभ्याम् ।
अर्केण दिग्भिश्च महद्भिरुच्चै-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १८ ॥

वातात्मना योऽग्निमुखान् हि देवान्
संवृज्य एषोऽनुविभाव्यतेऽतः ।
संवर्गधर्मेण महाविभूति-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १९ ॥

---

१ जपसहितम् २ कुः भूमिर्बुध्नो मूलं यस्य तम्.

प्राणात्मनाऽध्यात्ममपीक्ष्यते य-
स्संवर्गधर्मं दृशमभ्यगच्छत् ।
शूद्रोऽपि जानश्रुतिरेत्यरैक्वा-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ २० ॥

प्रकाशवानेव मनंतवांश्च
प्रदीप्तिमानायतनी च पादाः ।
यद्ब्रह्मणो भान्ति विचिन्तकानां
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ २१ ॥

चतुष्पदं ब्रह्म च षोडशांशं
समुन्नितं यन्मुनिरादिदेश ।
जाबालकायैतदनन्वयाय
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ २२ ॥

प्राणो ह्यसौ ब्रह्मनिरुक्तमेतत्
कं ब्रह्म खं चेत्यनलैस्त्रिभिश्च ।
कार्येतराकारमकारणं य-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ २३ ॥

वश्ये क्षणैश्शमपरैरपराजितैर्य-
श्चक्षुस्थ एष पुरुषः पुरुदृश्यतेऽस्य
स्थानेऽपि सर्पिरुदकं च न सिंचति श्री
विश्वेशमेतमभयं शरणं प्रपद्ये ॥ २४ ॥

---

१ ज्योतिष्मान् २ आयतनवान् ३ गौतमः ४ विषयपारवश्यरहितैः

चित्ते यदक्षिपुरुषेक्षकमर्चिरुच्चै-
र्घस्राज्र्जुनोदगयनानि[१] नयन्ति वैधीम्[२] ।
संवत्सरो रविशशांकशतह्रदाश्च
पश्चात् पुमान्पुरसुदेतु[३] स[४] विश्वनाथः ॥ २५ ॥

१ दिवसशुक्लपक्षोत्तरायणानि २ वैधींपुरं ब्रह्मलोकम्. ३ चित्ते
त्वित्यन्वयः ४ उल्काक्षिपुरुषात्मक इत्यर्थः

दशमः स्तबकः

प्राणात्मना देहमुपाश्रितो यः
श्रेष्ठस्तथा ज्येष्ठतरश्च नित्यम् ।
वागादिकान् धारयतीच्छयैष
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १ ॥

श्रद्धादि जुह्वत्यनलेषु देवा
द्युलोकमुख्येष्वथ पूरुषात्मा ।
निष्पद्यते पञ्चसु यः परात्मा[1]
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २ ॥

पञ्चाग्नि विद्यो गृहमेधिवर्य-
स्तपोधनो नैष्ठिक वेदगश्च[2] ।
सौरायणं यान्ति हि यं न सद्यो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ३ ॥

पञ्चाग्निविद्यामपठन्निगूढां
यद्ब्रह्मबुद्धेरधिरोहिणीं प्राक् ।
प्रवाहणं क्षत्रियमेत्य विप्रो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ४ ॥

---

१ यः परात्मा पुरुषरूपेण निष्पद्यते इति योजना २ वेदगो ब्रह्मचारी.

इष्टादि कृष्णम निशासि तैष्षं-
ष्मासैश्च पित्रा नभसा च नीतः ।
चान्द्रीं पुरीमेति हयन्नयात्यो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ५ ॥

खंवायुधूमाभ्रवलाहकाश्च
धारा च वृष्टेर्यवकादिरेतः ।
एतैः पतत्यत्र सयन्नयात्यो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ६ ॥

कल्याणकर्मा कमनीययोनिं
कपूयकर्मा च कपूययोनिम् ।
प्रपद्यतेऽज्ञोहह यं न यात्यो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ७ ॥

विद्याथवेष्टादि न सेव्यते यै-
स्ते यान्ति दंशादिपदं तृतीयम् ।
पथच्युता यत् पददूरदूरं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ८ ॥

कष्टागतिर्जन्म जरादि दुःखो-
त्सृष्टा हि यं संसरणस्य धीरः ।
तस्माज्जुगुप्सेत बुभुत्समानो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ९ ॥

---

१ असितः कृष्णपक्षः २ यं बुभुत्समानः इति योजना.

द्युमूर्द्ध मुख्यावयवैर्विशिष्टं
वैश्वानरं कृत्स्नमुपासते यम् ।
आत्मानमात्मन्यमलान्तरंगा
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १० ॥

प्रादेशमात्रं प्रभुमीश्वरं यं
वैश्वानरं ह्यश्वपतेरवायन्[1] ।
विप्राश्च राजन्यपतेरजन्यं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ११ ॥

येन श्रुतेन श्रुतमेव सर्वं
यच्चेन्मतं स्यान्मतमेव सर्वम् ।
यन्निश्चितं निश्चितमेव सर्वं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १२ ॥

विकार एतत् खलुनाममात्रं
जगद्यथा मृन्मयमाश्रयो यः ।
मृत्पिण्डवत् सन्तत सत्यमूर्त्ति-
र्नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १३ ॥

विकार एतत् खलु नाममात्रं
जगद्यथा हैममथाश्रयो यः
हेमोपमस्सन्तत सत्यमूर्त्ति-
र्नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १४ ॥

---

१ अवागच्छन्.

विकार एतत् खलु नाममात्रं
जगद्यथा पैण्डमथाश्रयो यः ।
पिण्डोपमस्सन्तत सत्यमूर्त्ति-
र्नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १५ ॥

अग्रे सदासीदसतः कथं स-
ञ्जायेत यत् सर्वमिदं ससर्ज ।
त्रिवृत् कृतैरग्निपुरोगमैरो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १६ ॥

प्राणादि सम्यग्ध्रियते च येन
जीवात्मना विश्वमनुप्रविश्य ।
व्याकुर्वता नाम च रूपमस्मै
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १७ ॥

बुद्ध्यादिमात्रान्वय जोहि यद्व-
दादर्शविंबः प्रतिभाति जीवः ।
या देवता न च्यवते महिम्नो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १८ ॥

तेजोऽबुपृथ्वीमयमन्नितत्वं
तेभ्यो न भिन्नं न च वस्तुतस्सत् ।
तथा जगद्यस्य विकारमात्रं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १९ ॥

---

१ पिण्डमयः २ तथा जीवः प्रातिभातीत्यभ्याहारेण संबन्धः

तेजोऽबुपृथ्वीमय एष सूर्य-
स्तेभ्यो न भिन्नोऽस्ति विवेककाले ।
तथा जगन्नास्ति हिरुग्यतोऽस्मै
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २० ॥

तेजोऽबुपृथ्वीमय एष चन्द्र-
स्तेषां हि रक्तार्जुनकृष्णरूपैः ।
रूपी भवत्येवमिदं यदीयं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २१ ॥

तेजोऽबुपृथ्वी विकृतिश्च विद्यु-
द्विचारितेऽपैति तटित् त्वतोत्तिः ।
तथा यदग्रे न जगद्विभात्यो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २२ ॥

अन्नस्य धातुर्जलतेजसोश्च
हृत्[2] प्राणवाचोऽणुतमोऽभिमानी ।
यस्तत्र कर्तृत्वपदे पतत्यो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २३ ॥

नाश्नाति पञ्चदश चेत् पुरुषो दिनानि
भायान्न षोडशकलः पठितं हि किञ्चित् ।
तस्मान्मनोऽन्नमयमंबु पिबेन्नबाधः
प्राणस्य तत्र[3] विहरन् गतिरस्तु शंभुः ॥ २४ ॥

---

१ हिरुक् पृथक् २ हृन्मनः ३ तत्रमनसि प्राणे च मनः प्राणमयत्वेन विहरन्निति भावः

पायादुपाध्युपहितः पुरुषोनुवेलं
ध्यायन्निव व्यवहरन्निव दृश्यमानः ।
यस्यां विविक्त्युपशमे परदेवताया-
मानन्दधाम्नि विनिमज्जति मां स शंभुः ॥ २५

१ विविक्तिर्विशेषविज्ञानम्.

एकादशः स्तबकः

शरीरशुङ्गो ह्ययमन्नमूल-
स्तस्यापि चापोऽग्निरपाश्च मूलम् ।
अग्नेश्च यन्मूलममूलमेत-
त्तंविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

यतो[1]ऽस्यवाणी मनसि प्रशाम्य-
त्य[2]ने मनोऽग्नौ स च हव्यवाहः ।
यस्मिन्परे ब्रह्मणि चाप्रकम्प्ये
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥

अणिष्ठमात्मा जगतश्च मूलं
सर्वस्य साक्षात् सुधियो विदन्ति ।
यद्ब्रह्मसत्तत्वमसीति वाक्या-
त्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥

प्रजास्तरूणां[3] रसवत् सुषुप्तौ
संपद्य यस्मिन् सति निर्विशेषा[4]ः ॥
वाक्येन यत्तत्वमसीति वेद्यं
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

---

१ यतो म्रियमाणस्य २ अने प्राणे ३ मधुदृष्टान्तः छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके नवमखण्डे द्रष्टव्यः ४ निर्विशेषा भवन्ति एको भवन्तीत्यर्थः

अब्धेर्यथाब्धिं प्रविशन्ति नद्यो
व्याघ्रादयो यद्वदपियन्ति तद्वत् ।
वेद्यं विचारेण च तत्त्वमस्या-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥

अजीवमेतन्म्रियते शरीरं
वृक्षोऽपि शुष्यत्यपजीवकश्चेत् ।
स एव सद्य त्रिपदैकवेद्यं
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

न्यग्रोधबीजाद्विटपीव जज्ञे
यतस्सतोऽणिम्न इदं समग्रम् ।
श्रद्धावता यत्त्रिपदैश्च वेद्यं
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥

यथाप्सुलीनं लवणं न पश्ये-
दणिम्न एवं यदलभ्यमक्षैः ।
ग्राह्यं च बुद्ध्या त्रिपदैर्गुरूक्तै-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ८ ॥

विक्रोशताऽवद्ध दृशास्वनीवृ-
न्नरेण गम्येत यथा यथोक्तम् ।
आचार्यवान्नृच्छति यत्त्रिशब्दै-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ९ ॥

---

१ सजीवो यत् सदेवेति योजना २ त्रिपदानि तत्त्वमसीत्येव
३ पुरुष इति शेषः ४ स्वदेशः ५ तत्त्वमसीति त्रिशब्दैः

मूर्खो मुमूर्षुस्सति यत् क्रमेण
विद्वान्मुमुक्षन्नपि तादृशैव ।
संपद्यते यत्र पदत्रयेण
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १० ॥

संपद्य यस्मिन्न बुधोऽबुधस्तु
प्रपद्यते जन्ममृषाभिसन्धः ।
ज्वलत्कुठारग्रहवह्निगरूयं[1]
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ११ ॥

शास्त्राण्यधीत्यापि शुशोच मोहा-
न्महर्षिरात्मानवबोधहेतोः[2] ।
यद्वात्मया जीह्यशुगात्मतुष्ट-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १२ ॥

यद्ब्रह्मबुद्ध्याह्वयवाङ्मनांसि
संकल्पचित्ते च विचिन्तयन्ति ।
ध्यानञ्च विज्ञानमथोबलञ्च
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १३ ॥

अन्नञ्च पाथोऽग्निमनन्तकञ्च[3]
स्मृतिं तथाशा मथं सूत्रदेवम् ।
ब्रह्मेति यत् सुष्ठु विदन्ति सन्त-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १४ ॥

---

१ परशुग्रहणदृष्टान्तोऽपि तत्र षोडशे खण्डे द्रष्टव्यः २ नारदः
३ आकाशः.

सत्यस्य विज्ञानमथास्य तर्कः
श्रद्धास्य निष्ठाथ च हेतुरस्याः ।
तस्याः क्रिया यत् सुखमेव तस्या-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १५ ॥

सुखन्तु भूमा नहि सौख्यमल्पे
यस्मिन्नदृग्दृश्य विभिक्तिलेशः ।
यो वै महिम्नि प्रतितिष्ठति स्वे
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १६ ॥

स्वात्माच भूमा पुरतश्चपश्चा-
द्यस्मात् समद्भूतमशेष विश्वम् ।
स्वाराज्यंवान् क्रीडति यद्विजानन् ।
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १७ ॥

आहारशुद्धौ खलु सत्वशुद्धि-
स्तस्याञ्च भूमात्मनि निश्चलाध्रीः ।
यस्मिंस्ततश्चाखिल पाशमोक्ष-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

ब्रह्मालये दहरसत्मनि पत्मतुल्ये
यद्ब्रह्म खादपि महत्तरमन्तरास्ते ।
नांहो न तृड् क्षुदजरश्च विमृत्युशोक-
स्सत्येच्छ सत्यकलनश्च गतिस्स शंभुः ॥ १९ ॥

---

१ इन्द्रियसंयमः २ दहरमल्पतरम् ३ सत्यकामः सत्यसंकल्पः

यद्वत् सुवर्णनिधिमूर्द्धचरा अपीमे
यद्ब्रह्महन्तहृदिशं ह्यनृतापिधानाः ।
यन्तस्तथाऽप्यहरहर्न लभन्त एत-
ल्लोकास्सुलोकनिलयोऽस्तु गतिस्स शंभुः ॥ २० ॥

यस्सेतुरेष जगतां विधृतिर्विभात-
श्शश्वन्न यत्र दिनरात्रिकथाप्रसंगः ।
योषा वितृष्णमतिरेव न वाक्प्रवीणो
यं प्राप्तुमर्हति सदास्तु गतिस्स शंभुः ॥ २१ ॥

नीलाश्च रक्तधवला हृदयस्य नाड्य-
स्सूक्ष्मा हि तत्र घृणयो मिहिरस्य तासु ।
मूर्द्धन्यया रविमतो द्रुहिणं ततश्च
संयाति यद्दहरवित् स हरो गतिर्मे ॥ २२ ॥

अक्षिस्थ एष पुरुषः खलु दृश्यते यो
ब्रह्मैतदेतदभयं ह्यसुरः प्रजेशात् ।
श्रुत्वैवमंशुगतबिंबमवेक्ष्य चात्मा
यो देह इत्यधिजगाम गतिस्स शंभुः ॥ २३ ॥

श्रुत्वा चाक्षुषपूरुषं गुरुमुखाच्छायेति जग्राह यं
पश्चाद्दोषमवेक्ष्य तत्र मघवान् शुश्राव यं स्वाप्निकम् ।

---

१ स्त्र्यादि विषयतृष्णया वहिरपकृष्टचेतसः २ पित्रादिं लोकानामाधारभूतः ३ विधारकः ४ रश्मयः ५ हिरण्यगर्भम् ६ विरोचनः ७ प्रजापतेः ८ य आत्मादेह इत्यधिगतवान्. ९ तदात्मरूपः

सौप्तश्चाप्रियवित्तिमन्धतमसं चात्रापि पश्यंस्तत-
स्तुर्यं ब्रह्मतया ग्रहीद्यमभयं दद्यात् स काशीपतिः ॥

मृत्युग्रस्तमिदं शरीरममृतो ह्यात्मा शरीरोज्झितः
देहाध्यासकृतं प्रियाप्रियशतं हित्वा च तद्भावनाम् ।
निष्पद्येत निजात्मनाऽऽत्मनिरतो विद्वानदभ्राब्दकै-
श्श्रुत्वे[2]तीन्द्र इयाय यत्परपदं पायात्स का[3]शीपतिः ॥

[1] पुत्रादि मरणादीनामप्रियाणामनुभवम् [2] इति वहुवत्सरैः श्रु
इन्द्रो यत् परपदमियाय इत्यन्वयः [3] तत्परपदात्मकः

द्वादशः स्तबकः

इयक्रतुप्राज्य समग्रकर्मभि-
स्समुच्चितो पास्तिभिरप्यतद्विदा ।
न लभ्यते भव्यमभव्य[1] वस्तु य-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १ ॥

प्रजेशमभ्य[2]स्यति मेध्यसैन्धवे
यमश्विवाय्वार्यमभावभृच्च यः ।
क्रियाफलं कारकमप्ययं विराट्
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २ ॥

यमश्मसंघट्टित पांसुपिण्डव-
द्विशीर्यते पङ्क[3]मभिद्रवत् स्वयम् ।
उपास्यरूपं ह्यनरूपरूपिणं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ३ ॥

विराट् स्वरूपेण य एकलः पुरा
वि[4]भाय पश्चाद्बुबुधे न किञ्चन ।
मदन्यदस्तीति ततः कुतो भयं
तमाश्रयाम्युत्तर काशिकाधवम् ॥ ४ ॥

---

१ अभव्यं नित्यसिद्धम् २ अश्वमेधाधिकारीति शेषः ३ पङ्कं पाप्मा.
४ भीतवान्.

सुतात् सुवर्णादथ दैववित्ततो-
प्यतिप्रियोऽभ्यन्तर एष पूरुषः ।
विनङ्क्ष्यति ह्यन्यदशेषमात्मन-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ५ ॥

सुराश्च सर्वेत्वमगुर्नरर्षयो
यदात्मबोधेन ततोऽभवं मनुः[1] ।
रविश्च हेत्यैक्षत वामदेवतं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ६ ॥

स्तुतिप्रणामप्रणिधानपूजनै-
र्यदात्मनोऽन्यां भजतेऽनुदेवताम् ।
य आत्मघाती स पशुर्दिवौकसां
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ७ ॥

पितृस्वरूपेण च योऽन्नसप्तकं
विधाय जन्तून् विबुधान् पशूनपि ।
अभाजयत् स्वञ्च यथास्वमेव[2] त-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ८ ॥

मनोमयः प्राणमयोऽथ वाङ्मयः
पितृत्वमासाद्य जिघत्सतीव यः ।
फलान्यजन्मा निजकर्मयन्त्रित-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ९ ॥

---

१ मनुः रविश्चाभवं इति वामदेवतं वामदेवः ऐक्षत दृष्टवान्
२ यथास्वं यथायोग्यम्

मनुष्यलोकस्स्वसुतेन कर्मणा
पितुश्च लोकस्सुरवेश्मविद्यया ।
विजय्य एतैर्न विजीयते तु य-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १० ॥

अवोऽयमव्यक्त तदन्य[1] लक्षण-
स्त्वयं हि वै नाम च रूप कर्मणी ।
अतो विरज्येत बुधो यदीप्सया
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ११ ॥

रवीन्दु विद्युत् प्रमुखेषु पूरुषो
विचिन्त्यते ब्रह्म तदन्यदूचिवान् ।
अजातशत्रुर्मुनये[2]ऽपि यत् परं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १२ ॥

हृदंबुजे व्योमनियत्र धीमय-
स्सुखेन शे[3]ते नृपबालविप्रवत् ।
अखण्ड सद्ब्रह्म तदेव साक्षिचि-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १३ ॥

विदन्ति यं प्राण शरीरकं शिशुं
शरीरमाधा[4]नममुष्य केचन ।
शिरोवराधा[5]नमथान्नबन्धनी[6]
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १४ ॥

---

१ अव्याकृत व्याकृतात्मकः २ मुनिरत्र गार्ग्यः ३ सुषुप्ताविति शेषः
४ आधानमधिष्ठानम् ५ वराधानं प्रत्येकस्थानम् ६ अन्नमेव बन्धनरज्जुः

सदास्ति मूर्त्तं कुजलानलात्मकं
त्यदस्त्यमूर्त्तं मरुदंबरात्मकं ।
अतीत्य चैतेऽवधिभूर्विभाति य-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १५ ॥

न वित्तपूर्णा चलया च लभ्यते
यदात्मभावामृतभावनिर्वृतिः ।
सुखं सुखान्याहरतीव वित्तवान्
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १६ ॥

यदात्मकामाय पतिः प्रियो भवे-
द्यदात्मकामाय च कामिनी प्रिया ।
यदात्मकामाय सुतःप्रियो भवे-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १७ ॥

यदात्मकामाय वसु प्रियं भवे-
त्तथा च लोकामरजन्तवः प्रियाः ।
यदात्मनोऽर्थे निखिलं च वल्लभं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १८ ॥

यदात्मनः प्रेष्ठतमस्य दृष्टये
श्रुतिर्मतिर्ध्यानमपि प्रकीर्त्यते ।
तथा विदन् ब्रह्मभवत्यशेषवि-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १९ ॥

---

१ अनायासेन.

यदात्मनोऽन्यत्र सुरादिकान् विदन्
पराक्रियेताज्ञतमस्सदुष्कृतैः ।
जगत्समस्तं हि सतत्त्वमात्मन-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २० ॥

न किञ्चिदस्ति व्यतिरेकतश्चिते-
स्ततस्तदात्मत्वमनात्मवस्तुनः ।
निनादवद्दुन्दुभिशंखयोर्भृशं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २१ ॥

यथा पृथग्धूमकणा धनञ्जया-
त्तथर्ग्यजुस्साम च निस्सरन्ति हि ।
यतः परान्निश्वसितोपमं नरा-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २२ ॥

विलीयतेऽक्षे विषयस्तदात्मनि
धियाश्चसोऽप्यात्मनि यत्र शेमुषी ।
अनन्तविज्ञानघनेऽप्समुद्रवत्
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २३ ॥

लवणशकलमप्सु प्रास्तमस्तं गतं स-
त्सदनुपृथगमूभ्यश्शक्यते नोद्ग्रहीतुम् ।

---

१ सतत्वं स्वरूपम् २ दुन्दुभिशंखदृष्टान्तौ बृहदारण्यके द्वितीयाध्याय-गत चतुर्थ ब्राह्मणे दृष्टव्यौ ३ धूमाश्च अग्निकणाश्च ४ परमात्मनः ५ प्रलयादिष्विति शेषः ६ मनसि ७ यथा आपस्समुद्रएकी भवन्ति तद्वदित्यर्थः

विदपियदपियातस्तद्बुद्धिभिन्नमात्रो
भवति न बहुसंज्ञस्तं भजे विश्वनाथम् ॥ २४॥

स्फुटसमुदितसम्यग्वित्तितो यस्य भित्ति-
र्व्यपसरति समूलं विश्वमात्मैव भाति ।
तदनुकथमुतिष्ठेत् कर्तृकर्मक्रियादि-
र्व्यवहृति रसतीयं विश्वनाथस्समाऽव्यात् ॥

१ मात्रादेहेन्द्रियादयः २ संज्ञाविशेषज्ञानम्. ३ भेदः

त्रयोदशः स्तबकः

पृथ्वीसमस्तजनिमन्मधुजन्तुवर्गः
पृथ्वीमधुद्विविधपूरुष एष पृथ्व्याम् ।
सूर्यो ऽङ्ग यस्य मधुतन्मधुकारणात्मा
ब्रह्मास्ति यत्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १ ॥

पूषा समस्तजनिमन्मधुजन्तुवर्गः
पूष्णोमधुद्विविधपूरुष एष पूष्णि ।
नेत्रे च यस्समधुसर्वमधूद्वहं स-
द्ब्रह्मास्ति यत्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २ ॥

यद्ब्रह्मभूतविबुधे निखिलात्मभूते
भूतानि चेन्द्रियगणाभुवनात्मदेवाः ।
सर्वेऽर्पितास्समभरा इव चक्रनाभौ
रे रे मनस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ३ ॥

योऽयं परात्परतरः पुरुरूपधारी
मायावशात् प्रतिशरीरमनुप्रविश्य ।
सर्वानुभूर्भवति निर्भयशोकमेकं
रे रे मनस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ४ ॥

---

१ शरीरे २ भुवनानि भूरादीनि आत्मानो विज्ञानमयाः देवा अग्न्यादयश्च.

पुण्येन पापपटलेन च तत्तदेत्य
जन्मेह हन्त विषयेन्द्रियमृत्युचक्रे ।
भ्राम्यत्यनारतमवैति न मृत्युमृत्युं
यं कर्मठस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ५ ॥

पारिक्षित प्रभृतयः पुरुपुण्यपुञ्ज-
भाजोऽपि सूत्रभुवनादि भवप्रभेदान् ।
गच्छन्ति मोक्षभवनं न विशन्ति यस्य
रे रे मनस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ६ ॥

साक्षाद्यदस्ति निखिलात्मकमात्मवस्तु
विज्ञाति विश्वमथ संहृति सन्नियन्तृ ।
ब्रह्माद्वयं यदि तरत् खपुरीव चार्तं
रे रे मनस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ७ ॥

यद्ब्रह्म चैकमखिलान्तरमस्यवित्त्यै
प्रत्यक् षडूर्मिरहितं गुणिनो ह्यगौणम् ।
भिक्षार्थिनस्स्वयमटन्ति बुधा विधूय
विश्वैषणास्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ८ ॥

यद्ब्रह्मबोधमभिकांक्ष्य बुधानिरीहा
मुण्डाविवर्णवसनाश्च विवर्णलिङ्गाः ।

---

१ पारिक्षिता अश्वमेधयाजिनः २ ब्रह्मलोकादि संसा[...]
३ संहृतिः कार्यकरणसंघातः ४ आर्त विनाशि ५ बोधाय ६ [...]
गुणसंपन्नाः ७ सर्वा एषणाः ८ वर्णलिंगरहिताः

आरण्यकेषु[1] विचरन्ति च यत् प्रबुद्धा[2]
निष्किञ्चनास्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ९ ॥

निश्शेषमेतमवबुध्य यस्मात्सविद्य-
द्विज्ञाननिष्ठितमतिर्मननैकशीलः ।
पाण्डित्यबाल्यमुनिताभिरकृत्यशेष-
स्सर्वांभवेत्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १० ॥

यद्ब्रह्म सम्यगवगच्छति यो महात्मा
प्रत्यक्तया भवति विश्वतनुश्च विद्वान् ।
स ब्राह्मणस्स पुरुपूज्यतमस्स धन्य-
स्तस्मै नमस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ११ ॥

वर्णाश्रमास्पृगशरीर पदे हि यस्मिन्
तादृग्धियैव विहरेदिह यो विपश्चित् ।
स ब्राह्मणस्स बहुमान्यतमस्स धन्य-
स्तस्मै नमस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १२ ॥

विप्रोहमाढ्यकुलवानिति मन्यमानो
न ब्राह्मणश्चिदहमित्यनुचिन्तयन्[3] यत् ।
स ब्राह्मणस्स बहुमान्यतमस्स धन्य-
स्तस्मै नमस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १३ ॥

ओतश्च मिश्रितममिश्रित भूतवर्गे[4]
प्रोतश्च सोऽथसकलाश्रयसूत्रदेवे ।

---

१ उपनिषत्सु अरण्येषुच. २ यदपरोक्षज्ञानिनश्च. ३ यश्चिद्रूपं ब्राह्महमित्यनुचिन्तयन्नस्तीति योजनीयम् ४ पञ्चीकृत भूतपञ्चकम्.

प्राणात्मनि स्वयमतर्क्यमहिम्नि सोऽप्यु-
द्भूतो यतस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १४ ॥

सूत्रश्च संग्रथितसर्वजगद्यथा स्रक्
सूत्रेण तस्य च नियन्तृ यदन्तरस्थम् ।
जानन् भवत्यमरवित् स्वपरंत्रयीवि-
न्निश्शेषवित्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १५ ॥

पृथ्व्यां स्थितोऽन्तरतरो यमकृच्च पृथ्वी
यं वेद यस्य पृथिवी तनुरात्मभूतम् ।
सर्वस्य निर्वपुषमस्तसमस्तधर्मं
नारायणं तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १६ ॥

तिष्ठन् जले नियमकृच्च जलस्य यो यं
नो वेत्ति कं जलतनुश्च जलान्तरास्ते ।
आत्मा च कृत्स्न जगतो ह्यभवी च यः श्री
नारायणं तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १७ ॥

भूतेषु तिष्ठति समेषु नियामकश्च
तेषां हि भूततनुरन्तरगश्च योऽसौ ।
नावैति भूततितिरात्मदृशिं च यं श्री
नारायणं तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १८ ॥

द्रष्टा न दृष्टिविषयः श्रुतिगोचरो न
श्रोताऽमतो मननकृच्च न बुद्धिबोध्यः ।

---

१ स्वश्चपराणि भूतानि चवेंदांश्च वेत्तीति २ यो नियमकृच्च ... ध्याहृत्ययोजनीयम् ३ असंसारी.

बोद्धा च योऽन्यरहितश्च यदन्यदार्त्तं
स्रक्सर्पवत्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १९ ॥

सर्वेऽपि येन विधृताः खलु लोकिलोकाः
सोऽव्याकृते नभसि तत्तु यदक्षरे च ।
गांगेयकुण्डलनिभं प्रतितिष्ठति श्री-
सच्चिद्घनं तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २० ॥

अस्थूलमेतदनणुश्रवणाक्षिवाणी-
हीनं ह्यलोहितमबाह्यमनन्तरं च ।
अप्राणमस्तगुणमस्ति यदेव भोक्तृ
भोज्येतरस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २१ ॥

यस्य प्रशासनमहिम्न इमौ रवीन्दू
स्वस्वोदयास्तमयकर्मणि निष्ठितौस्तः ।
स्वश्चस्थिरोऽस्थिरतरं स्फुटनाद्यपेतं
निस्तिष्ठस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २२ ॥

यस्य प्रशासनमहिम्न इमे च काला
मासर्तुवत्सरपराः कलयन्ति जन्तून् ।
नद्यः स्रवन्ति धवलाद्धिमशैलतश्च
गंगादयस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २३ ॥

यजनतपनबुद्धिर्वुद्ध्यते यत्र यस्सं-
सरति स कृपणो यस्त्वक्षरं ब्रह्मसम्यक् ।

---

१ सूत्रदेवः २ सुवर्णकुण्डलन्यायेनेत्यर्थः ३ स्वर्द्युलोकः स्थिरा भूमिः

विगतविषयतृष्णो वेत्ति स ब्रह्मभूतो
भवति भवविमुक्त्यै भावयेतद्भवांघ्रिम् ॥ २४ ॥

अचलितचितिमात्रं ह्यक्षरं ब्रह्मयद्वै
प्रचलिततनुतन्वां[2] दर्शनादिक्रियाकृत् ।
सकल सजनु[3]रन्तर्यन्तृचोपाधिभेदा-
द्भवति भवविमुक्त्यै भावयेतद्भवांघ्रिम् ॥ २५ ॥

१ तस्यभवस्य विश्वनाथस्य अंघ्रिपादम्. २ देहे ३ संजनुषः प्रा

चतुर्दशः स्तबकः

प्राणात्मनो यस्य महाविभूते-
र्विस्तारमात्रं हि समस्तदेवाः ।
अनंतसंख्या वसुरुद्रमुख्या-
स्स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १ ॥

सर्वेऽस्य नामाकृतिकर्मरूपं
प्रतिष्ठितं वै हृदि सा च देहे
उभे च यस्मिन् क्रमशः परस्मिन्
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ २ ॥

यन्नेति नेतीति निषेधवाचा
निर्दिश्यतेऽगृह्यमशीर्यमेतत् ।
असक्तबद्धा व्यथमात्मतत्वं
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ३ ॥

प्रत्यक्षतर्काद्यखिलप्रमाणैः
प्रमीयते न श्रुतिमूर्द्धभिन्नैः ।
यः पूरुषः प्रत्यगखण्डबोधः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ४ ॥

---

१ ब्रह्मविद्या प्रयुक्तां श्रियामित्यर्थः २ नामरूपकर्मात्मकम्
वेदान्तव्यतिरिक्तैः

वृक्षे विशीर्णे समुदेति बीजा-
न्नवीनवृक्षस्सदणिम्न इत्थम् ।
यतः प्ररोहन्ति मृता मनुष्याः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ५ ॥

विज्ञानमानन्दघनं यदस्ति
दातुः परं ब्रह्मफलं प्रयच्छत् ।
मुक्तोपसृप्यञ्च शिवं प्रशान्तं
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ६ ॥

वाक् प्राणचक्षुः श्रवणानि चित्तं
ब्रह्मेति बुद्ध्वा हृदयञ्च विद्वान् ।
यद्ब्रह्म विज्ञातुमगौणमर्हेत्[1]
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ७ ॥

आदित्यचन्द्राग्निवर्चांसि यत्र
शाम्यन्ति मर्त्यः कुरुते तदात्वे ।
यज्ज्योतिषाकर्मनिजात्मरूप-
स्स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ८ ॥

यज्ज्योतिरन्तर्हृदि पूरुषाख्यं
परत्र चात्रापि मतिप्रधानम् ।
चरत्यथ ध्यायति खेलतीव
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ९ ॥

---

१ मुख्यम्.

यः पूरुषात्मा विषयेन्द्रियाद्यै-
स्संकीर्णभाजाग्रति भात्यकीर्णः
स्वप्ने स्वयंज्योतिरलुप्तदृष्टिः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १० ॥

रथान्तुरंगानथ राजमार्गान्
सरांसि योऽसौ सृजते स्रवन्तीः ।
मोद प्रमोदानपि पूरुषात्मा
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ११ ॥

उच्चावचान् संस्कृतिमात्ररूपान्
निर्माय नारीनगरादिकान् यः ।
भुङ्क्ते स्वयंभास्सुविविक्तमूर्त्ति-
स्स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १२ ॥

स्वप्ने च यो जाग्रति जागरूक-
स्तत् पुण्यपापाननुबद्ध एव ।
संक्रीडतेऽयं पुरुषो ह्यसंगः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १३ ॥

यस्संप्रसादे च निजस्वरूपे
स्फुरत्यपास्तार्तिशतस्सुखात्मा ।
स्वयंप्रभोऽयं पुरुषो ह्यसंगः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १४ ॥

---

१ सुषुप्ते.

स्वप्ने च यो जाग्रति मत्स्यतुल्य-[1]
श्चरत्यथ श्येनवदात्मनीडम् ।
सुषुप्तमासर्पति पूरुषात्मा
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १५ ॥

सृष्ट्वा स्वप्ने विविधविषयान्
सूक्ष्मनाडीगतस्सन्
यद्यत् पश्याम्यहमुसकलं
तत्तदात्मैव साक्षात् ।
विद्वन् मूर्तिं ये इति मनुते
गाढसंस्कारतन्त्रः
सौम्याधीशः[2] श्रितसुरतरुः
श्रेयसेनस्स भूयात् ॥ १६ ॥

कान्ताश्लिष्टः किमपि कमनो
वेत्ति नान्तर्न बाह्यं
यद्वत् स्वात्मन्यभयतृषि यः
प्राप्तनिर्भेदभावः ।
आनन्दात्मा स्वपिति च तथा
नीरुजः पूरुषात्मा[3]
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ १७ ॥

---

१ महामत्स्यादिदृष्टान्ताः चतुर्थाध्याये तृतीय ब्राह्मणे द्रष्टव्याः
२ सौम्यस्य सौम्यकाश्या अधीशः ३ पूरुषो जीवः तद्रूपस्सन्.

पश्यन्नेव स्वयमवलचि-
दृश्यजातं न पश्य-
त्यन्यत् सुप्ते करणरहितः
प्राज्ञभावं प्रपन्नः ।
द्रष्टुर्दृष्टेर्भवति विलयो
नाविनाशित्वतो यः
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ १८ ॥

स्वस्मादन्यत् स्फुरति तमसा
प्रत्युपस्थापितं सत्
तत्र द्वैते चरति पुरुधा
धीमयो यः परात्मा ।
दृष्टिघ्राति प्रभृति कृतिभि-
र्जाग्रत स्वाप्नभूम्योः
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ १९ ॥

भाराक्रान्तं शकटमिव यो
लिङ्गमास्थाय त्रिधा-
कर्माश्लिष्टं वपुरभिनवं
पूर्वदेहात् प्रयाति ।

---

१ स्वस्मादन्यद्दृश्यजातम् २ कृतिभिरिन्द्रिय व्यापारैः

जाग्रत् स्वप्नक्रमवदमूर्तं
चाप्ति जीवत्वभृच्छ्री-
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ २० ॥

योऽयंमूर्द्ध्नो नयनसुषिणा
वान्यरन्ध्रेण देहा-
न्निष्क्रम्यान्यत् सपदि वपुर-
[२]ज्जन्तुवज्जीवमूर्त्तिः ।
धार्मं धर्मादथ च दुरिता-
द्दौरितश्चाददीत
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ २१ ॥

भोक्तुं भोगान् भ्रमति विषया-
सक्तितोऽत्राप्यमुत्र
ब्रह्मज्ञानादथ च जनुषे
नास्ततृष्णः स्वधिष्ण्यम्[३] ।
प्राप्तः प्राणोत्क्रमणविरहा-
[४]द्याति यो जीवमूर्त्तिः
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ २२ ॥

---

१ कर्मफलम् २ अञ्जन्तुस्तृणजलूका ३ स्वरूपभूतं
४ जनुषे न यातीति संबन्धः

जिज्ञासन्ते यदिह विविधैः
कर्मभिर्निर्निमित्तैः
पुण्यापुण्ये तरति सुतरां
यद्विदन् ब्रह्मसाक्षात् ।
शेते यद्विद्धपुरुरगनि-
र्मोकवत् प्रास्तमारात्
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ २३ ॥

शान्तिर्दान्तिस्तितिक्षा ह्युपरतिरथ य-
च्चित्तनैश्चल्यमेतै-
र्यायत् प्रत्यक् प्रपश्यत्यहमिदमिति स
ब्राह्मणो ब्रह्मतुल्यः ।
मुख्यं ब्राह्मण्यमेतन्न विकृतैसुकृतैः
क्षीयते वर्द्धते वा
वन्दे तं हैमभूमीधरशिखरलसत्
सौम्यकाशीपुरीशम् ॥ २४ ॥

पूर्णे पूर्णप्रतिष्ठानिरुपचरित स-
द्वस्तु यद्ब्रह्म साक्षा-
दद्धयस्तैर्नामरूपैरुपाहितपदवी-
माप्नवद्भूरि भेदैः ।

---

१ मनुजा इति शेषः २ अशुभशुभकर्मभिः ३ पूर्णस्य कार्यात्मकस्य ब्रह्मणः प्रतिष्ठा अधिष्ठानम्.

कर्मोपास्तिप्रकारैः कमितृभिरितरै-
श्चैतदाराध्यतेऽद्धा
वन्दे तं हैमभूमीधरशिखरलसत्
सौम्यकाशीपुरीशम् ॥ २५ ॥

१ फलकामनावद्भिः फलाभिसन्धिवर्जितैश्च.

पञ्चदशः स्तबकः *

काल एव जगन्मूलं स्वभाव इति चापरे ।
वदन्ति यमजानन्तः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १ ॥

भूतानि जगतो मूलं यदृच्छेति च केचन ।
जानन्ति यमजानन्तः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ २ ॥

गुणैर्निगूढो यो देवः कारणानाञ्च कारणम् ।
स एव जगतो मूलं स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ३ ॥

विश्वमाया विनाशस्स्याद्यस्य देवस्य दर्शनात् ।
अक्षरस्य क्षरेशस्य स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ४ ॥

क्लेशपाशापहानिस्तु देवं ज्ञात्वैव नान्यथा ।
ब्रह्मशब्दाभिधेयं यं स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ५ ॥

योनिनिष्ठो यथावह्निस्तद्वदात्मापि देहगः ।
योऽदृश्यो दृश्यतेऽभ्यासात् स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ६ ॥

क्षीरे सर्पिर्यथा तद्वदात्मा यस्सर्वगोऽद्वयः ।
गृह्यते सत्यतपसा स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ७ ॥

---

* अस्मिन् स्तवके श्वेताश्वतरो ब्रह्मविन्दुश्च षोडशे कैवल्यं परमहंसश्च
तदशे मैत्र्येयी तेजोविन्दुश्च सम्यक् संगृहीताः

1 क्षरं प्रधानम्.

समेदेशे विशुद्धे च गुहादौ वातवर्जिते ।
स्थित्वैव यमनुध्यायेत् स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ८॥

यस्याभिव्यक्तितः पूर्वमर्कधूमादि दर्शनम् ।
संभवेद्योगिनां योगे स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ९ ॥

कृतार्थो भ्राजते योगी तेजोमयकलेवरः ।
प्रत्यक्षं वीक्ष्य यं साक्षात् स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १०॥

विश्वबाहुर्विश्वमूर्तिर्विश्वेशो विश्वभावनः ।
विश्वाधारश्चयो रुद्रः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ११॥

ज्यायोऽणीयो वा न किञ्चिद्यस्मात् स्तब्धश्चकास्ति
वृक्षवन्मोक्षदो मोक्षः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १२॥

योषा पुमान् कुमारश्च कुमारी चास्ति यो विराट् ।
दण्डग्राही च जरठः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १३ ॥

अजया मोहितो भुङ्क्ते जनस्तां न जिहासति ।
गुणमय्या तु यच्छक्त्या स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १४॥

मायया सृजते विश्वं मायी यस्संगवर्जितः ।
अन्यस्तु सज्जते तस्मिन् स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १५॥

उपादानं माया शबलितपरब्रह्मजगतः
प्रधानं वाणुर्वा क्षणिकचिदसद्वा न भवति ।
निचाय्यैतद्योनिं यदिह विबुधानिर्वृतिमिता-
स्सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ १६ ॥

---

१ मायया २ जीवः ३ निचाय्य साक्षात् कृत्य.

तमो वा रात्रिर्वा दिवसगणना वा द्युति[1]रियं
नयत्रस्वास्मिन् यद्विलसति शिवं शान्तमतुलम् ।
न शून्यं नाशून्यं स जनुरजनुश्चापि यदहो
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ १७ ॥

अधश्चोर्द्धं पश्चात् पुरत इति सर्वासु नितरां
ककुप्सु[2] भ्राजिष्णुप्रसृतमहमित्येतद्दषयः ।
निगूढं यत् पूर्वेऽविदुरपि विदन्त्यद्य सुधियः
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ १८ ॥

परात्मा प्राच्यानां परिपचनकृत् प्रच्युतिमृती
विभीतो यस्माद्यः स्वयमसुभृतां[3] कर्मफलदः ।
विधत्ते कर्मास्ति ध्रुवमथफलं तस्य विविधं
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ १९ ॥

न योषित् षण्डो वा न खलु पुरुषो वापि पुरुषैः
परात्मा योऽलिंगोप्यतनु तनु[5]रूपैः प्रकृतिजैः ।
सलिंगः क्रीडत्यांतनुरिदमवष्टभ्य भुवनं
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २० ॥

महिम्नायस्येदं भ्रमति भवचक्रं भवपते-
र्भ्रमेन्नो कालेन प्रकृति[6]वशतो वा न च भवेत्[7] ।
भ्रमैनैष्कारण्यं शिवशिवतत्वैषोऽपि[8] महिमा
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २१ ॥

---

१ सूर्यप्रकाशः २ दिक्षु ३ प्राणिनाम् ४ परिपूर्णः ५ स्थूलसूक्ष्मरूपैः प्रकृतिः स्वभावः ७ भ्रमैनैष्कारण्यञ्च न भवेदिति योजना ८ जगत् रणविषयको जगन्मोहः

न कार्यं यस्यैषन्न च करणमप्यस्य सदृशः
कनीयान् ज्यायान् वा न च गुणमयी यस्य विपुल
स्वतः सिद्धाशक्तिर्विलसति विबोधादि वपुषा
सदातद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २२ ॥

प्रधानक्षेत्राज्ञ प्रभुरभवहेतुर्न च पति-
र्यदन्यः कश्चिद्यो जनयति विधिं विश्वजनकम् ।
यदैश्वर्यात् स्फारं स्फुरति हृदये चास्य निगमः
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २३ ॥

अबुद्ध्वा ब्रह्मैतद्यदि यदमृतं याति मनुज-
स्तदा कुर्यात् कृत्तेरिव च वियतो वेष्टनमपि ।
मुमुक्षुर्यं विद्याद्विषयविधुरेणैव मनसा
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २४ ॥

निरुद्धे चित्ते तु स्फुरति पराविद्या स्फुटमियं
महामोहध्वान्तं दलयति पलालोपममथ ।
निरर्थान् ग्रन्थौघान् त्यजति यदभिज्ञप्तिनिरतः
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २५ ॥

---

१ ज्ञानेच्छा क्रिया स्वरूपेण २ मोक्षहेतुः ३ हिरण्यगर्भम् ब्रह्मेति योजनीयम् ५ मोक्षम्.

षोडशः स्तबकः

यमिह पश्यति चास्तिकतामति-
श्चरणभक्तिरचञ्चलधीरपि ।
इति गुणत्रयनेत्रयुतः पुमान्
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १ ॥

द्विविधकर्मचयेन तथात्मजै-
र्धनचयैश्च न कश्चिदवाप्नुयात् ।
यदवबोधजयत् पदनिर्वृतिं
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ २ ॥

सकलसन्यसनं न ततोऽन्यतो
यदनुदर्शनसाधनमिष्यते ।
परमहंसपदात्मकमास्तिकैः
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ३ ॥

यतय एव यदात्मसमाधिना
सुखसरस्वतिमज्जितुमीश्वराः ।
गृहपरा न तथा गृहमेधिनः
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ४ ॥

---

१ ईश्वरपादानुरक्तिः २ श्रौतस्मार्तकलापेन ३ सुखसमुद्रे.

विमलचित्ततनुर्विजने जन-
श्शिवमवक्रतनुश्च विचिन्तयेत् ।
जितहृषीकगतिर्यमुतस्थिवान्
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ५ ॥

असितकण्ठमुमेशमनद्भुतं
प्रभुमजं त्रिदशं परमेश्वरम् ।
हृदि दधीत तथायमनन्यधीः
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ६ ॥

यमनुसंदधदेवमुमाधवं
सुखचिदात्मकमात्मपदं मुनिः ।
सकलसाक्षिणमृच्छति चिद्घनं
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ७ ॥

कमलजः कमलापतिरप्ययं
पशुपतिः सुरतारपती च सः ।
यमिह पश्यति यो निजहृत्तटे
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ८ ॥

पुरिशयं पुरुषं परमादरा-
द्यमनुवीक्ष्य विलंघयति क्षणात् ।
जनिमृती न विमुक्तिरितोऽन्यथा
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ९ ॥

---

१ विजने स्थाने तस्थिवान् यं विचिन्तयेदिति योजना
२ मुमुक्षुरिति शेषः

निरवशेषमवस्थितमात्मनि
स्वहृदयान्तरिदं हि चराचरं ।
इति नितान्तमतिः पदमेति यत्
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १० ॥

सुधिषणा प्रणवारणि घर्षणा-
ज्ज्वलित एष दहेज्ज्वलनो भृशम् ।
यदवबोधतनुर्भवबन्धनीं
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ११ ॥

स्वयमसंगचिदुद्यदविद्यया
विपरिसूढ इवोढकलेवरः ।
चलति यो ललनादिषु जाग्रति
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १२ ॥

अथ च यः करणोपरमेस्वयं
सृजति वासनया सकलं जगत् ।
अथ निमज्जति गाढतमः प्रहौ
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १३ ॥

निरुपमे निजधाम्नि निरंकुशे
सुखघनेऽस्तसमस्तभिदे हि यः ।
स्वयमिह स्वमहिम्नि विराजते
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १४ ॥

---

१ यदवबोधस्वरूपोज्वलनः २ प्रहिः कूपः ३ सुषुप्ताविति शेषः

स्वकृतकर्मनियन्त्रित एव यः
स्वभवनाद्विविनिष्क्रमते बहिः ।
व्यवहरत्यथ पूरुष भावभृत्
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १५ ॥

त्रिषु पुरेष्वयमेव मनारतं
चरति यः पुरुधा रचयन् स्वयम् ।
भुवनमेतदशेषमविद्यया
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १६ ॥

इदमखण्डचिति प्रविलीयते
सुखसरस्वति यत्र पुरत्रयम् ।
उरगरज्जुनिभे च निजात्मनि
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १७ ॥

अमृतमायतनं जगतो बृह-
त्तनुतमश्च सदोंचिति वस्तु यत् ।
पुरुष एष तदेव चिरन्तनं
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १८ ॥

श्रवणदर्शनकृत् स्वयमद्वयः
श्रवणदृग्रहितोऽपि महाद्भुतम् ।
चरणकृच्चरणश्च विनैव य-
स्स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १९ ॥

---

१ स्वरूपभूतात् सुषुप्तिस्थानात् २ सर्परज्जुवत्
३ तनुतममत्यन्तमणुं.

स्पृशति नो सुकृतं न च दुष्कृतं
यमथ यस्य न धीर्वपुरिन्द्रियम् ।
जनिमृती च न भूप्रभृतीन्यपि
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ २० ॥

निरातङ्के यस्मिन् निरुपचरितब्रह्मणि सदा
मनोलीनं यस्य त्यजति ससुतान् दारसुहृदः ।
अथैकं कौपीनं विहरति गृहीत्वा विगतभीः
स शंभुः स्वाराज्ये दिशतु वसतिं सौम्यनिलयः ॥ २१ ॥

न शीतं नाप्युष्णं न सुखमसुखन्नापि निधनं
न मानामानौ शुक्क्षुदपि न पिपासा न विषयाः ।
यदात्मक्रीडैकप्रवणधिषणस्यास्ति विदुषः
स शंभुः स्वाराज्ये दिशतु वसतिं सौम्यनिलयः ॥ २२ ॥

नदंभो दर्पोऽहंकृतिरथ न निन्दास्तुतिरपि
न कामः क्रोधो वा कुणपमिव गर्ह्यं स्वकवपुः ।
न शौद्रयं वैरूप्यं यत् परपरमहंसस्य विदुषः
स शंभुः स्वाराज्ये दिशतु वसतिं सौम्यनिलयः ॥ २३ ॥

न दण्डी यः काष्ठग्रहणपटुरज्ञानजटिलः
स दण्डी ह्यद्दण्डान् सुदृढषडरीन् यो दमयति ।
धृतो यद्ब्रह्मण्यव्यभिचरितनिष्ठैकलगुडः
स शंभुः स्वाराज्ये दिशतु वसतिं सौम्यनिलयः ॥ २४ ॥

---

१ भूम्यादि पञ्चभूतानि २ स्वयंप्रकाशे ब्रह्मधाम्नि ३ निष्ठाम् ४ शब्द-स्पर्शादयः ५ येनेति शेषः

अनिष्ठो[1] यमिष्ठः स्थिरमतिरनन्तोदवसितः[2]
हिरण्ये चातृष्णो रुचिरविषयेष्वात्मधनिकः ।
वरेण्यो यो भिक्षुस्सतु जयति नान्येऽघनिधयः
स शंभुः स्वाराज्ये दिशतु वसतिं सौख्यनिलयः ॥

---

१ अनिकेत इत्यर्थः २ अनन्ता वसुधा एव उदवासितं गृहं य

सप्तदशः स्तबकः

शिखरीप्रपतत्यथोदधिः
परिशुष्यत्यवनिर्निमज्जति ।
किमिहास्तिभवेऽभवं भयं
शरणं याहि शिवं शिवाधवम् ॥ १ ॥

अस्मन्धतमः प्रहीनरः
प्लवबद्धोरभवे विघूर्णति ।
गतिरत्र भवत् पदांबुजे
रतिरेवोत्तरकाशिकेश्वर ॥ २ ॥

मैथुनोत्थमतिमात्रकच्चरं
चान्त्रमूत्रकुहराद्विनिर्गतम् ।
गात्रमेतदसृगास्थिसाश्रितं
तत्र किं कुरु रतिं त्रिलोचने ॥ ३ ॥

स्पर्शरूपरसगन्धनिस्वने-
ष्वाशया भ्रमति यः पृथग्जनः ।
तद्विघ्नतरमात्मवस्तु यत्
स्वस्तिदोऽस्तु मम तत्तनुश्शिवः ॥ ४ ॥

---

१ मूढः

प्राप्यते न तरसा तव तत्वं
प्राप्यते तु तपसान्तरनेधाः[1] ।
वीतिहोत्र इव वृत्तिनिवृत्या
शान्तिमेति तपसैव हि चित्तम् ॥ ५ ॥

चित्तमेव हि भवो निजचित्तं
शोधयेद्विविदिषुश्शिवतत्वम् ।
भावयेत् सरसमंघ्रिसरोजं[2]
काशिकेश तव चित्तसरोजे ॥ ६ ॥

हेयादेयाद्दूरतो निर्विशेषं
निस्सामान्यं चास्ति यत्तत्वमीडे ।
निर्वाणं तन्निर्वपुर्निर्विकल्पं
विश्वाधारं विश्वनाथाभिधानम् ॥ ७ ॥

शुद्धं बुद्धं नित्यमुक्तस्वभावं
सत्यं सूक्ष्मं संविदानन्दसिन्धुः ।
प्रत्यग्वस्तुप्रीयतां प्रेममूर्त्तिः
सौम्याकारं सौम्यकाशीश्वराख्यम् ॥ ८ ॥

तव हे शिवमन्दिरं शरीरं
शिवदस्त्वञ्च सदाशिवोऽन्तरात्मा ।
अहमस्मि शिवोऽद्वयः परात्मे-
त्यनुचिन्तापचितिस्तवेश्वरस्य ॥ ९ ॥

---

१ अनेधाः दग्धेन्धनः २ रसोऽनुरागो भक्तिः

कृतधीः कृतसंन्यसनो न वसे-
न्निजनीवृतिनिर्जितवृत्तिरयम् ।
शिवतावकनिष्कलरूपमलं
विदधीत हृदि प्रविविक्तपदे[2] ॥ १० ॥

नवामठं भीमवनं न वाश्रयेत्
कृतीकृतस्वात्मविनिश्चयस्सताम् ।
कटाक्षपातेन विपर्ययोज्झितः
कटाक्षपात्रं तव सौम्यराट् प्रभो ॥ ११ ॥

शिवविशयवतस्तवाद्वितीये
ह्यनुपहितात्मनिशुद्धवुद्धमुक्ते ।
सुखमनतिशयं कदापि मोक्ष-
प्रभवमहो न भवेत् प्रमूढवुद्धेः ॥ १२ ॥

कर्मत्यागः प्रेषजपो वा न यतित्वं
भिक्षाशित्वञ्चापि यतित्वं न कथञ्चित् ।
शश्वन्निष्ठा संयमनोत्थैव यतित्वं
विश्वेशत्वद्धाम्नि विभो भूम्नि महिम्नि ॥ १३ ॥

अविद्यया शिव तव मोहिता जना
विचक्षणा अपि निगमेषु नैगमम् ।
पराङ्मुखाः खलु न विदन्ति पूरुषं
स्वचातुरीमुदरंभराय[3] बिभ्रति ॥ १४ ॥

---

१ निर्वासनः २ पदं स्थानम् ३ उदरपोषणाय.

मृदुपलमणिकाष्ठेष्वीशबुद्धिं वितन्वन्
भयकरभवयन्त्रे भ्राम्यति भ्रान्तचित्तः ।
भवभवद[1]भवन्तं वीक्ष्य मोक्षाय साक्षात्
प्रभवति[2] रवितुल्यं हन्त भान्तं हृदन्ते ॥ १५ ॥

धवलगिरिजाबन्धो
सिन्धोदुरन्त कृपांबु न-
स्त्वमणु न परिच्छिन्नः
छिन्नोपि कालदिगादिभिः ।
वहि[3]रपि भवानन्तः
पूर्णो यथांभसि कुंभि[4]का
बहिरपि सदाह्यन्तः
शून्यो यथांबरकुंभिका ॥ १६ ॥

न दर्शनमदर्शनं
न दृगदृक् च दृश्योद्गमो-
प्यदृश्यमपि यत्र हि
स्वपनजाग्रदस्तं गमः ।
निर[5]स्तकलनश्च यत्
पदमहोदृषत् सन्निभं
त्वियं हि सहजास्थितिः
शिवं तवोत्तममाराधनम् ॥ १७ ॥

---

१ भवं द्यति खण्डयतीति भवदः तस्य संबुद्धिः २ मर्त्य इति
३ भवानन्तर्बहिरपि पूर्ण इत्यन्वयः ४ घटः ५ निस्संकल्पम्.

शिवोऽस्मि विमलोस्म्यहं
विशकलोस्मि बुद्धोऽस्म्यहं
सदस्मि सकलोऽस्म्यहं
सुखचिदस्मि शुद्धोऽस्म्यहं ।
इति स्फुटमनुक्षणं
च यदि वृत्तिरात्मोन्मुखी
त्वियं हि सहजस्थितिः
शिव तवोत्तमाराधनम् ॥ १७ ॥

अकार्यकरणोऽस्म्यहं
ह्यपगुणोऽस्मि पूर्णोऽस्म्यहं
अजन्मनिधनोस्म्यहं
निरुपमोऽस्मि नित्योऽस्म्यहम् ।
इति त्रिपथगांबुव-
द्यदि वहेत् सजातीयधी-
रियं हि सहजस्थितिः
शिव तवोत्तमाराधनम् ॥ १९ ॥

ब्रह्मास्मीति निजान्तरात्मधिषणा
नैष्कर्म्यसत्कुंभकात्
सम्यग्ब्रह्ममयं समस्तमिदमि-
त्युद्दामदृष्ट्या तथा ।
सौम्याधीशविभो भवत्पदमुद-
स्ताघ्यस्तभेदं बुधाः

---

१ आत्मवृत्तिनैश्चल्यरूपात् कुंभकात्.

संपश्यन्ति सदा सुरोधकलया
नासाग्रदृष्ट्या च किम् ॥ २० ॥

भाववृत्तिमथशून्यवृत्तिमति-
भक्तियोगबलपुष्कला
सन्निरस्य परिपूर्णवृत्तिमथ
पालयेद्बुधमतालिका ।
ब्रह्मवृत्तिमिह तावकीं परम
पावनीं न परिशीलये-
द्यस्स पुरुष पशुर्विपश्चिदपि
नोत्तरेद्भवसरित् पतिम् ॥ २१ ॥

त्वन्मयंशिवविराट् च सूत्रमथ
विष्णुजिष्णुमुखदेवताः
त्वन्मयंशिव खवायुवायुसख-
वारिभूप्रभृति वैकृतम् ।
त्वन्मयं शिव यदस्तिभूतमथ
भावि सर्वमपि सौम्यराट्
त्वन्मयं यदि समस्तवस्त्वथ च
चिन्मयं तदथमन्मयम् ॥ २२ ॥

ब्रह्मैवाहं न जीवो जनिमृतिरहितः
सच्चिदानन्दसान्द्रः

---

१ प्रशस्तो बुधः २ वैकृतं प्रकृतिविकाराः ३ असुरोधः प्राणं

शत्रुर्मित्रं कलत्रं खगमृगभुजगाः
सर्वमात्मैव साक्षात् ।
बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियादि क्वचिदपि न मयि
श्लिष्टमश्लिष्टगात्रो
निश्चित्यैवं विपश्चिच्छिव तव विहर-
त्यात्मभूतो महात्मा ॥ २३ ॥

देशः कालोनिमित्तं कथमपि न जग-
ज्जन्मभंगादिकार्ये-
ष्वेवं सृष्टेरभावे क्व भवति भव भो-
भोक्तृभोज्यभोगप्रसंगः ।
बन्धो मोक्षश्च कस्यास्त्यखिलकृदखिलं
चेन्द्रजालोद्भवं त्व-
न्मायाकैवल्यमूलं श्रुतिरपिजगदु-
ज्जृंभणे वंभणीति ॥ २४ ॥

कर्ता भोक्ता च भोगस्सुखमसुखमथ
स्वर्गतिर्दुर्गतिश्च
पुण्यापुण्यञ्च सर्वं विलसितमसतो
भाति तृप्येन्मृगांभः ।

---

१ अखिलं करोतीति अखिलकृत् हे सर्वशक्त इत्यर्थः २ माया-कैवल्यं मायामात्रम् ३ तात्पर्येण निर्वदतीत्यर्थः ४ पिपासुर्मृगांभोमृग-तृष्णाजलं पीत्वा पीत्वा तृप्येद्यदीति सम्बन्धः

पीत्वा पीत्वा पिपासुर्यदि जगदुदितं
संभवेत् सत्यमेतत्
सौम्याधीशात्रिसत्यं तव वपुरमलं
त्वेकमेतन्नतोऽस्मि ॥ २५ ॥

१ त्रिषुकालेष्वपि सत्यम्.

अष्टादशः स्तबकः

योदेवस्सत् स्वरूपेण स्वस्मिन्नेव विराजते ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १ ॥

यो देवः सूत्ररूपेण जगत् सूत्रयति प्रभुः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ २ ॥

यो देवो विधिरूपेण जगत् सृजति राजसः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ३ ॥

यो देवो विष्णुरूपेण जगत् पुष्णाति शुक्लवान्[१] ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ४ ॥

यो देवो रुद्ररूपेण जगदश्नाति तामसी[२] ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ५ ॥

यो देवस्सूर्यरूपेण जगद्भासयते सदा ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ६ ॥

यो देवस्सोमरूपेण पुष्णात्योषधिवीरुधः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ७ ॥

यो देवो वृषरूपेण वर्षत्यंबुदवाहनः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ८ ॥

---

१ सत्वगुणवान् तदुपाधिकइति यावत् २ तामसो गुणः अस्यास्तीति तामसी.

यो देवो नृपरूपेण नृधर्मान् पाति धर्मवित् ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ९ ॥

यो देवो ब्रह्मरूपेण ब्रह्मवेदितुमिच्छति ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १० ॥

यो देवो धेनुरूपेण दुग्धं दुग्धे जगत् प्रसूः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ११ ॥

यो देवो व्याघ्ररूपेण गर्जत्यूर्जोवनान्तरे ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १२ ॥

यो देवः खगरूपेण द्रुतमुड्डयने दिवि ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १३ ॥

यो देवो वृक्षरूपेण स्तब्धश्छायां प्रयच्छति ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १४ ॥

यो देवस्तृणरूपेण हरिद्वर्णश्चकास्ति हि ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १५ ॥

यो देवस्सर्वरूपेण सर्वो भवति सर्वदा ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १६ ॥

प्रसीद भगवन् सौम्य काशिकेश कृपांबुधे ।
प्रसीदाविद्यकध्वान्तध्वंसहंसनिभप्रभो ॥ १७ ॥

---

१ ऊर्जो विक्रमः २ हंसस्सूर्यः

यदि प्रसन्नो भवदंघ्रि सेवा-
रतिं प्रयच्छान्यदहं न याचे ।
निरस्तभेदभ्रममृत्युपाशां
परां परानन्दकरीं परात्मन् ॥ १८ ॥

संपूरितमिदं स्तोत्रं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।
श्रुत्यन्तसुमनोमाध्वींद्वयमत्यन्तमुत्तमम् ॥ १९ ॥

जयत्युत्तरकाशीति सौम्यकाशीति च श्रुतम् ।
क्षेत्रं गोत्रकुलोत्तंस हिमवन्मध्यसंस्थितम् ॥ २० ॥

पञ्चक्रोशविशङ्कटं वरुणया
चास्या च संवेष्टितं
भूभृद्भूषणवारणावतनितं
वालंवियद्भ्राजते ।
गंगा यत्र च गायतीवमधुरं
सामोर्मितुङ्गस्वनै-
स्तप्यन्ते च तपो वितृष्णमतयो
यत्रोल्वणं साधवः ॥ २१ ॥

तत्रास्ते विश्वनाथः श्रीशक्त्यादिसहितः प्रभुः
स्तोत्ररत्नेन यो देवस्तुष्टुवेऽनेन सौम्यराट् ॥ २२ ॥

---

१ माध्वींमधु २ विशङ्कटं विशालम् ३ वरुणा असीत्युभाभ्यां सरिद्भ्याम् ४ दुस्सहम्.

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्रद्धयैतदनन्यधीः ।
स कामो लभते कामं निष्कामो मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २३

केरलावनिसुतेन शोभनं
भूरिभाग्यनिधिनेदमीरितम् ।
भिक्षुणा हिममहीध्रशृंगिको-
त्संगवासरसिकेन केनचित् ॥ २४ ॥

विश्वेश्वरस्य कृपया खलुतत्प्रयुक्तः
क्षुद्रोपलब्धिमकुटोऽहमकार्षमेतत् ।
तस्यार्पितश्च पदयोः स्तवकोपहारः
स्तोत्रात्मकस्सुरभिलोऽस्तु स सुप्रसन्नः ॥ २५ ॥

इति श्री सौम्यकाशीशस्तोत्रं

संपूर्णम्

---

१ उपलब्धिर्बुद्धिः . अत्यन्तकृशबुद्धिरिति यावत् २ स्तवकाः गुच्छाः त एव उपहारः

પુસ્તક મળવાનાં ઠેકાણાં:—

(૧) ધી જગદીશ્વર પ્રીંટીંગ પ્રેસ,
ગીરગામ ગાયવાડી, ઘર નં. ૯, મુંબઈ-૪.

(૨) વલ્લભરામ વિશ્વનાથ પંડિત,
મુ. પડધરી, કાઠીઆવાડ.